योगविद्या

वर्ष 11 अंक 12
दिसम्बर 2022
सदस्यता डाकखर्च – रु100

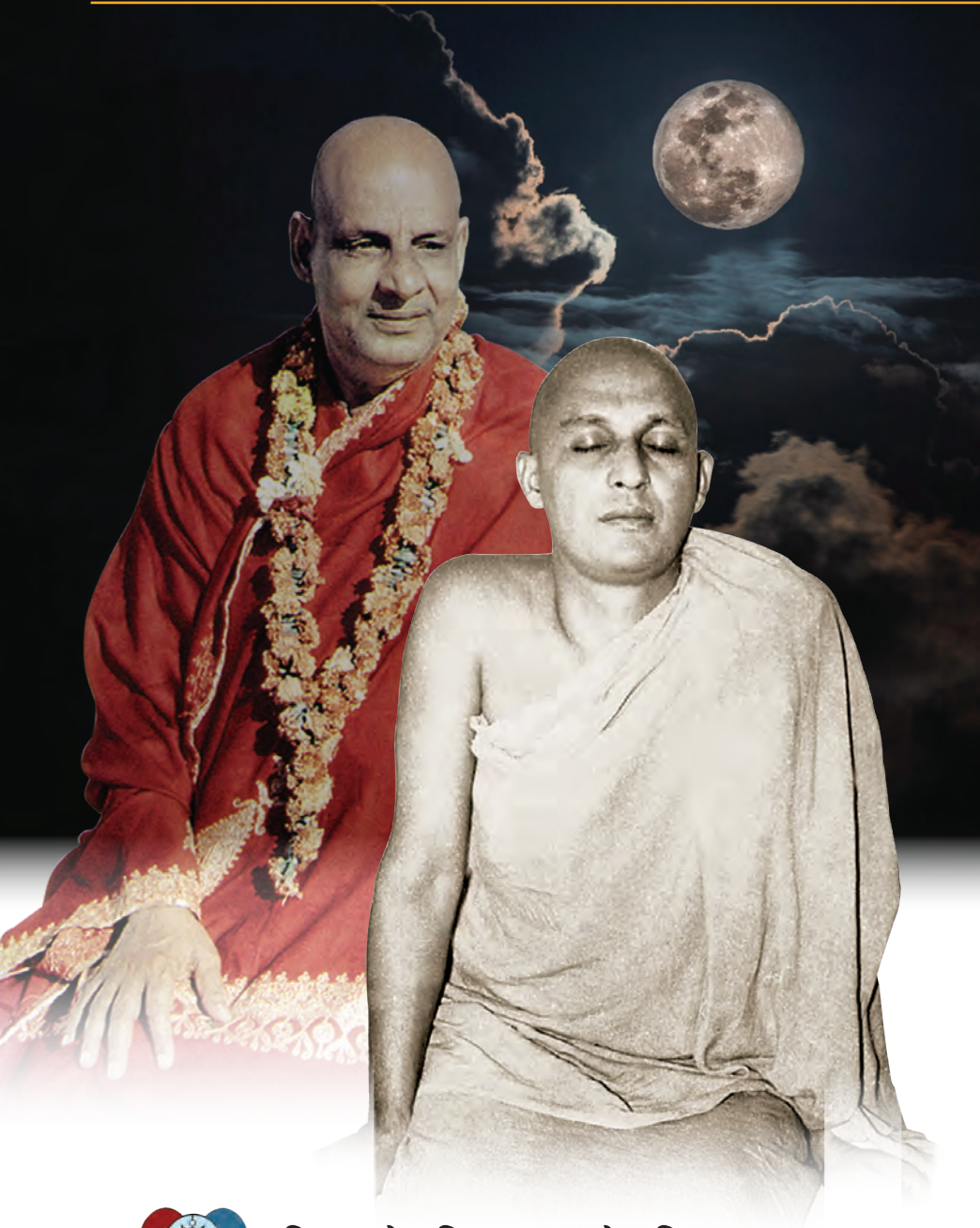

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरि: ॐ

योगविद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2022

उपयोगी संसाधन

वेबसाइट :

www.biharyoga.net
www.sannyasapeeth.net
www.satyamyogaprasad.net

एप्प :
(Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

Bihar Yoga
APMB
YOGA (अंग्रेजी पत्रिका)
YOGAVIDYA (हिन्दी पत्रिका)
FFH (For Frontline Heroes)

कुल पृष्ठ संख्या : 56 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर एवं अन्दर के प्लेट:
श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के प्रति गुरु-भाइयों की श्रद्धांजलि

इस कलियुग में, पापों से बोझिल धरती पर अल्मोड़ा की सस्य-श्यामला भूमि में 1923 में एक सुन्दर शिशु अवतरित हुआ। उसका नाम धर्मेन्द्र था। धर्मेन्द्र ने जीवन की क्षण भंगुरता का अनुभव किया, बुद्ध की तरह घर का त्याग किया, इच्छाओं का त्याग किया। मिथ्या मोह, छली ममता और भीषण माया का अभेद्य कवच तोड़ ऋषिकेश की पावन भूमि में शिवानन्द जी की गोद में जा पहुँचा। महाशिवरात्रि के अवसर पर स्वामीजी के पुनीत कर-कमलों द्वारा ब्रह्मचर्य आश्रम में दीक्षित हुआ 'ब्रह्मचारी सत्य चैतन्य'। ब्रह्मचारी ने सत्यनिष्ठा को अंगीकार किया, माया के बन्धन त्याग दिए। 'मैं संन्यासी हूँ' – पवित्र मंत्रोच्चारण कर विश्व कल्याण का स्वर्ण-विहान जगाने चला, योग क्षेम का अभियान उठाने चला। वह स्वामी सत्यानन्द है।

– सुशीला, एम.ए., दिल्ली

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर–811201, बिहार के लिए स्वामी शिवध्यानम् सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद–121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी ज्ञानसिद्धि सरस्वती

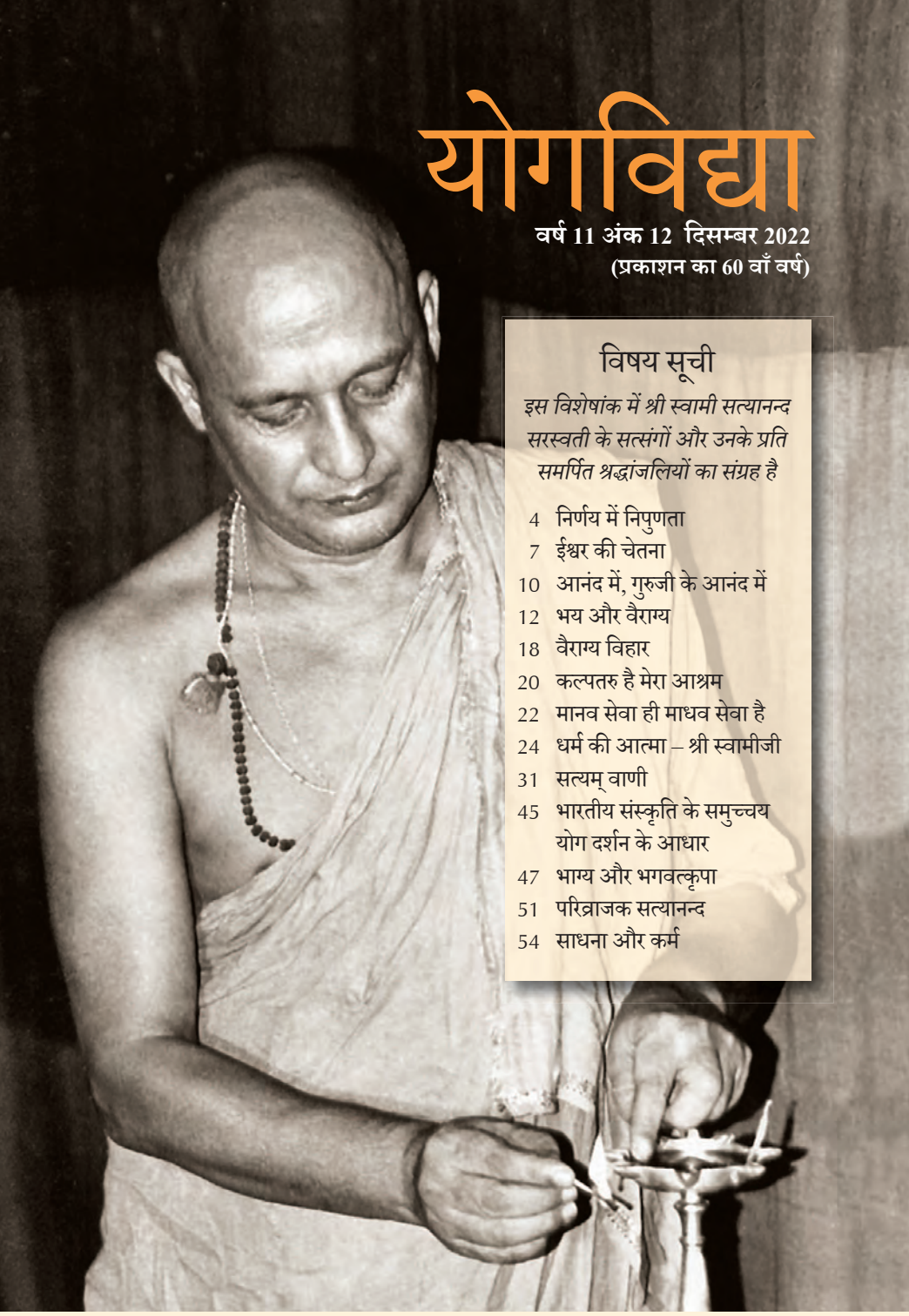

योगविद्या

वर्ष 11 अंक 12 दिसम्बर 2022
(प्रकाशन का 60 वाँ वर्ष)

विषय सूची

इस विशेषांक में श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के सत्संगों और उनके प्रति समर्पित श्रद्धांजलियों का संग्रह है

4 निर्णय में निपुणता
7 ईश्वर की चेतना
10 आनंद में, गुरुजी के आनंद में
12 भय और वैराग्य
18 वैराग्य विहार
20 कल्पतरु है मेरा आश्रम
22 मानव सेवा ही माधव सेवा है
24 धर्म की आत्मा – श्री स्वामीजी
31 सत्यम् वाणी
45 भारतीय संस्कृति के समुच्चय योग दर्शन के आधार
47 भाग्य और भगवत्कृपा
51 परिव्राजक सत्यानन्द
54 साधना और कर्म

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिकः। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन॥

निर्णय में निपुणता

जीवन में सही फैसले कैसे लेने चाहिए?

संसार में बहुत कम ही लोग ऐसे हैं जो यह फैसला कर पाते हैं कि क्या करना है और क्या नहीं करना है। अधिकांश लोगों को निर्णय लेने में समस्या होती ही है। इसका मतलब यह कि तुम्हारे साथ जो हो रहा है वह दूसरों के साथ भी हो रहा है और यह स्वाभाविक है। कई बार तुम सही फैसला लेकर सफल हो जाते हो और कई बार गलत फैसला लेने के कारण असफल हो जाते हो। यह समस्या सब को होती है, चाहे वह व्यापारी हो या जुआरी, राजनेता, लेखक, चोर या संन्यासी। क्या करना चाहिए, क्या नहीं, और जो करना चाहिए उसे क्यों नहीं कर पा रहा हूँ – यह समस्या सबके साथ है और इसका कोई सीधा समाधान नहीं।

कॉलेज का विद्यार्थी यह निर्णय नहीं ले पाता कि उसे विज्ञान, कला या वाणिज्य, कौन-सा विषय लेना है। एक लड़की जो शादी करना चाहती है यह फैसला नहीं ले पाती कि शादी इस लड़के से करे या उस लड़के से। एक ग्रेजुएट जो नौकरी करना चाहता है यह फैसला करने में असमर्थ होता है कि उसे सरकारी नौकरी करनी चाहिए या गैर-सरकारी, उसे अपने देश में नौकरी करनी चाहिए या विदेश में या फिर अपना अलग व्यापार ही शुरू कर देना चाहिए। इस प्रकार बहुत-से परस्पर विरोधी विचार उत्पन्न होते हैं। कुछ लोगों के मन में संयोग से सही विचार आ जाते हैं, पर ये बुद्धि से नहीं, अन्तर्प्रज्ञा से उत्पन्न होते हैं।

पाश्चात्य देशों में, और अब तो अपने देश में भी काउंसेलिंग की भरमार है। लोग पारिवारिक और वैवाहिक मुद्दों पर, बच्चे, नौकरी या शिक्षा संबंधी मामलों में काउंसेलर से सलाह लेने जाते हैं। 'क्या हीरे का कारोबार मेरे लिए ठीक रहेगा?' काउंसेलर कहेगा, 'नहीं, यह ठीक नहीं रहेगा।' आज व्यक्ति खुद कोई फैसला ले ही नहीं पाता, दूसरे पर निर्भर रहता है। दूसरे का निर्णय ठीक भी हो सकता है और गलत भी।

अभी तुम अपनी बात कर रहे हो, मैं अब अपनी बात करता हूँ। मेरे लिए कई रास्ते खुले थे। मैं हिन्दी, संस्कृत या अंग्रेजी में लेखक हो सकता था। मैं एक अच्छा वक्ता हो सकता था क्योंकि मेरी गीता, रामायण, वेद, उपनिषद्

आदि शास्त्रों पर गहरी पैठ है। मैं अच्छा प्रशासक हूँ, टाईपिंग और शॉर्टहैण्ड जानता हूँ। साथ ही कृषि, गोपालन, भवन-निर्माण, किताबों के लेखन-मुद्रण जैसे कार्यों की क्षमता मुझमें थी। मैं क्या करूँ, यह फैसला खुद तो नहीं कर सकता था, लेकिन नियति ने मुझे एक ऐसे आश्रम में ला खड़ा किया जो बड़ा प्रगतिशील था। वहाँ भारत के अन्य आश्रमों की तरह केवल शास्त्रों का अध्ययन या राम-राम का जप नहीं होता था। अपने गुरु आश्रम में मैंने गायन, शिक्षण, लेखन, व्याख्यान, अनुवाद, बैंकिंग जैसे वे सारे कार्य किए जो मैं करना चाहता था और मुझे इससे पूर्ण संतोष मिला।

अब प्रश्न उठता है कि तुम्हें अपने जीवन में क्या करना है, कैसा निर्णय लेना है? पहली बात, तुम्हारा एक परिवार है न? तुम्हारा पहला धर्म है परिवार की देखभाल करना। चाहे तुम इसे पसन्द करो या न करो, यही तुम्हारा धर्म है। यह तुम्हें करना ही है और इस पर कोई अन्य विचार नहीं हो सकता। दूसरी

बात यह कि परिवार को हंसी-खुशी के साथ चलाने के लिए घर के सभी काम-काज कुशलता से करने चाहिए। इसमें रसोई घर से लेकर हर एक चीज की सुव्यवस्था शामिल है। इतने से ही संतोष नहीं करना, परिवार में अध्यात्म का भी थोड़ा स्थान रखना चाहिए। सुबह-शाम या फिर किसी अन्य समय कोई आध्यात्मिक कार्यक्रम अवश्य किया जाये। अपने स्वास्थ्य पर ध्यान देना भी आवश्यक है। इन सब के साथ तुम्हें यह भी खोजना चाहिए कि तुममें कौन-सी प्रतिभा है। उसे एक शौक या हॉबी के रूप में विकसित करना चाहिए। इसके अलावा अगर तुम किसी कारखाने या कार्यालय में नौकरी करना चाहो तो वह भी की जा सकती है, उससे कुछ पैसे भी मिल जायेंगे।

एक गृहस्थ के रूप में जीवन के चार चरण होते हैं। ब्रह्मचर्य आश्रम में पढ़ना और अध्ययन करना रहता है, गृहस्थ आश्रम में अपनी इच्छाओं की पूर्ति और अपने धर्म का निर्वाह करना होता है, वानप्रस्थ आश्रम में सेवा निवृत्ति हो जाती है और संन्यास आश्रम में त्याग होता है। गृहस्थाश्रम के दौरान अपनी मानसिक क्षमताओं का अधिक-से-अधिक विकास करना चाहिए, नहीं तो वृद्धावस्था में समस्या हो जाती है। साठ-पैंसठ की उम्र के बाद अवसाद घेर लेता है, व्यक्ति सनकी होने लगता है। इसलिए गृहस्थाश्रम में तुम जो भी कर्म करते हो – घर-परिवार चलाना, नौकरी करना, पैसा कमाना, पैसा खर्चना, प्रेम करना, घृणा करना, लोगों से मिलना, उनसे बिछुड़ना – यह सब तुम्हारे मन-मस्तिष्क के लिए एक सीख है, प्रशिक्षण है। भले ही तुम कोई जीवनमुक्त या संत न बनना चाहो, केवल एक अच्छा गृहस्थ बनने के लिए भी यह जरूरी है।

तुम आज जो बीज बोओगे वही फसल बुढ़ापे में काटोगे। साठ-पैंसठ की उम्र के बाद बड़ी कठिनाई होती है, अभी शायद तुम्हें इसका अनुभव नहीं है। उस समय तुम कुछ नहीं कर सकते, तुम्हें मालूम रहता है कि मृत्यु किसी भी समय दस्तक देने वाली है, उसका भय परेशान करता है। अतीत की यादें सताती हैं, असुरक्षा की भावना बढ़ जाती है, तुम सोचते रहते हो कि अगर मैं बीमार हो गया तो मुझे शौचालय तक कौन ले जाएगा, अगर मुझे लकवा मार गया तो कौन मेरी देखभाल करेगा, अगर पैसे कम पड़ गये तो भोजन कहाँ से आयेगा। ये सारी बातें बुढ़ापे में तीव्र हो जाती हैं। इससे बचने के लिए पचास साल तक की जिन्दगी अच्छे ढंग से जीयो, चाहे तुम धार्मिक हो या अधार्मिक, स्त्री हो या पुरुष।

– 21 मार्च 1998, रिखियापीठ

ईश्वर की चेतना

ईश्वर की चेतना कैसे प्राप्त हो, यह सभी के लिए एक समस्या है। आजकल पढ़े-लिखे हिन्दुस्तानियों को भी यही समस्या हो रही है। देखो, भगवान के बारे में ज्यादा सोचने की जरूरत नहीं। जब जेब में पैसा होता है तो उसके बारे में सोचते हो क्या? भगवान अगर मेरी जेब में हैं तो मुझे उनके बारे में सोचने की क्या जरूरत? भगवान मेरे हृदय में हैं, मैं उनकी रचना हूँ, वही मेरी जीवन रूपी गाड़ी को चला रहे हैं। अगर मैं गीता पढ़ता हूँ तो वही मुझे इसकी प्रेरणा दे रहे हैं। अगर मैं किसी लड़की के साथ हूँ या मदिरा पान कर रहा हूँ या पूजा-पाठ कर रहा हूँ तो यह सब भी उनकी प्रेरणा से ही हो रहा

है। यह कोई जरूरी नहीं कि तुम भी इसी तरह सोचो, इस विषय में सहज और सरल होना चाहिए।

भगवान से वैसा प्रेम नहीं चलता जैसा किसी लड़के या लड़की के साथ होता है। भगवान वासना का विषय नहीं हैं। अगर तुम उनके बारे में न भी सोचो तो वे नाराज़ नहीं होते, क्योंकि आखिर यह भी तो उनकी ही इच्छा का परिणाम है। आस्तिक और नास्तिक, दोनों ईश्वर की इच्छा के परिणाम हैं। उन्होंने ही महात्मा बुद्ध को पैदा किया जो ईश्वर में विश्वास नहीं करते थे। सुकरात को भी उन्होंने ही पैदा किया जो कहते थे कि ईश्वर की बजाय अपने को जानो। उन्होंने ही सिकन्दर को प्रेरणा दी जो अपनी सेना के साथ कई दार्शनिकों को भारत लेकर आया। जब वह वापस लौटा तो भारत से एक जैन मुनि को साथ ले गया।

इसीलिए कहता हूँ कि ये सारी चीजें किसी उच्च सत्ता द्वारा नियंत्रित होती हैं। यह उच्च सत्ता केवल तुम्हारे मन-मिजाज को ही निर्देशित नहीं करती, बल्कि तुम्हारे पाचन, रक्त संचालन, इन्द्रियों, सब का संचालन करती है। आखिर तुम करते क्या हो? कुछ नहीं, जो कुछ होता है वह अपने आप उसी ईश्वर के निर्देश पर प्रकृति द्वारा सम्पादित होता है। श्रीरामचरितमानस में कहा भी गया है – *सबहि नचावत रामु गुसाईं।*

एक गृहस्थ होने के नाते तुम्हें अपने कर्मों के साथ जीना है। कर्म की परिभाषा क्या है? अपनी इच्छाओं की पूर्ति कर्म है। यह कर्म तुम्हारे हाथ से नहीं, मन में होता है। इच्छा ही कर्म है, कुछ चाहना ही कर्म है। संतुष्टि और असंतुष्टि भी कर्म है। इसीलिए मैं कहता हूँ कि कर्म मानसिक क्रिया है। आध्यात्मिक जीवन में सबसे महत्त्वपूर्ण चीज यही है कि पुरुष और स्त्री प्रेमपूर्वक मिल-जुलकर जीवन बितायें। यही उनके जीवन की सार्थकता है। यही धर्म है, यही उनका कर्म है। तुम किसी पुरुष के साथ रहती हो या कोई पुरुष किसी महिला के साथ रहता है तो यह ईश्वरेच्छा की पूर्ति है। व्यापक दृष्टिकोण से देखें तो तुम और तम्हारा पति प्रकृति और पुरुष के स्वरूप हैं। तुम वाम भाग हो और तुम्हारा पति दक्षिण। तुम इड़ा हो तो वह पिंगला है। विवाह एक सामाजिक व्यवस्था तो है ही, लेकिन पति-पत्नी का साथ-साथ जीवन-यापन करना दिव्य विधान की पूर्ति भी है। विवाह के बाद ही पुरुष और स्त्री साथ रह सकते हैं, यह विधान समाज ने बनाया है, लेकिन इस सामाजिक ठप्पे के बिना भी अगर कोई पुरुष और महिला साथ रहते हैं तो वे ईश्वरीय विधान की पूर्ति ही करते हैं।

अब अगर स्त्री और पुरुष साथ रहते हैं तो एक-दूसरे के प्रति उनके कुछ दायित्व होते हैं जो स्वाभाविक हैं। ये क्या हैं? श्रद्धा और विश्वास। श्रद्धा और विश्वास हमेशा बरकरार रहना चाहिए, उनका अतिक्रमण कभी नहीं होना चाहिए। हाँ, अन्तर तो रहेंगे ही। दायें और बायें भाग में, अनुकम्पी और परानुकम्पी प्रणाली में अन्तर तो रहता ही है, लेकिन इसके बावजूद समायोजन बना रहना चाहिये।

युवावस्था में मैं अपनी बुद्धि पर भरोसा करता था, लेकिन अब मेरा झुकाव श्रद्धा और भक्ति की ओर है। लेकिन साथ ही मेरे जीवन में कई गंभीर समस्यायें भी हैं। पिछले साल कई कानूनी और स्वास्थ्य संबंधी समस्यायें रहीं। मुझे भविष्य की चिन्ता सताने लगी, विश्वास डगमगाने लगा। ऐसे में उच्च, दिव्य सत्ता में आस्था बनाये रखने के लिए क्या करूँ?

रोजमर्रा की परेशानियों और समस्यायों को अपनी बुद्धि से सुलझाना चाहिए। भगवान ने तुम्हें मन और बुद्धि आखिर इसीलिए तो दिये हैं, उनका उपयोग करना चाहिए। अगर मैं तुम्हें कलम दूँ तो उससे तुम्हें लिखना है, चाकू दूँ तो उससे सब्जी काटनी है और रायफल मिले तो जरूरत पड़ने पर अपनी सुरक्षा भी करनी है। उसी तरह ईश्वर ने जब मन, बुद्धि और इन्द्रियाँ दी हैं तो अवसर आने पर उनका उपयोग करने में हर्ज नहीं है। इससे तुम्हारी भावना या श्रद्धा का विरोध नहीं होता। अपने मन, बुद्धि और इन्द्रियों के साथ श्रद्धा और भावनाओं का भी उपयोग करना चाहिए।

साथ ही एक चीज और याद रखो। कठिनाइयाँ और मुसीबतें जीवन रूपी सोपान के पायदान हैं, ये कभी स्थायी नहीं होते। कभी-कभी कठिनाइयाँ काफी देर तक खिंच जाती हैं, क्योंकि हम घबरा जाते हैं, समझ में नहीं आता कि क्या करें और अपनी घबराहट में खतरे की घंटी बजा देते हैं। इससे समस्या सुलझने के बदले उलझ जाती है। ऐसी कोई भी परिस्थिति आये तो सबसे पहले मन को शांत और स्थिर रखना चाहिए, उत्तेजित नहीं होना चाहिए। ऐसा कर पाओगे तो ये समस्यायें ज्यादे देर तक नहीं ठहरेंगी।

– 21 मार्च 1998, रिखियापीठ

आनंद में, गुरुजी के आनंद में

श्रीमती रत्ना ब्यौहार, रायपुर

जीवन में आनंद और प्रसन्नता का सूत्र देखा जाय तो बड़ा सरल और सहज है, जिसे परमहंसजी यूँ कहा करते थे –

चाह गई चिंता मिटी, मनुवा बेपरवाह।
जिसको कछु न चाहिए वो ही शाहंशाह॥

परमहंसजी से हमने यही सीखा कि सुख-दुःख में अनासक्तभाव ही आनंद का प्रतिरूप है। जो जीवन की विभिन्न लीलाओं को अनासक्त भाव से देखता हुआ जीता है वही संसार के सत्य का आनंद लेता है।

ईश्वर नित्य-निर्गुण है जो प्रत्येक चैतन्य के भीतर विराजमान है। उस प्रसुप्त शक्ति को भक्ति, ज्ञान, सत्कर्म, ध्यान, सत्संग या योगशक्ति से अनुभूत करना पड़ता है, तभी सत्य और ज्ञान से युक्त ईश्वर के आनंद की अनुभूति होती है।

अंतःकरण को निर्मल करना ही संस्कार है जो माता-पिता, परिवेश और गुरु के सान्निध्य से मिलता है। वहाँ दुःख, क्रोध, अहंकार, परिग्रह और लालसा का विसर्जन होता है। मानसिक अवसाद एवं कुवृत्तियों से शरीर में अम्ल बनने लगता है जिससे माँसपेशियाँ कड़ी हो जाती हैं और जिसके कारण शरीर अस्वस्थ हो जाता है। आनंद की स्थिति को प्राप्त करना ही स्वस्थ जीवन का रहस्य है।

धर्म के प्रति आस्थावान् व्यक्ति परमार्थ प्रयोजन हेतु प्रयास करते हैं, दैवी शक्तियाँ उनको सहयोग देती हैं। न्यूनतम आवश्यकताओं से जीवन यापन करनेवाले अपरिग्रही कहलाते हैं। घड़ी सौ रुपये में भी आती है और एक करोड़ में भी, दोनों हाथों में बंधी रहती हैं, पर समय तो एक-जैसा ही बताती हैं।

कुछ लोग मानसिक अनुकूलन न होने से दुःखी बने रहते हैं। भूतकाल के दुःख को वर्तमान में खींचकर दुःखी रहते हैं, भविष्य की चिंता में दुःखी रहते हैं, दुःख की अवस्था से उबरना ही नहीं चाहते। जैसे एक फिल्म में जेलर सुधार हेतु छः कैदियों को खुले वातावरण में ले गया, उनकी हथकड़ियों और पैर की बेड़ियों को खोल दिया गया। लेकिन कैदियों को नींद नहीं आ रही थी। जब पुनः हथकड़ी-बेड़ी को हाथ-पैर में बांध देते हैं तब वे सब चैन से गहरी नींद सो जाते हैं।

दूसरी ओर कुछ लोग आनंद में इतने डूबे रहते हैं कि उन्हें दुःख की अनुभूति ही नहीं होती। संत तुकाराम अत्यंत निर्धन थे, पत्नी ने खेत से गन्ना लाने को कहा। तुकाराम गन्ने लेकर आ रहे थे तो रास्ते में लोगों को गन्ना बाँटते घर पहुँचे। केवल एक ही गन्ना बचा था तो पत्नी ने क्रोधवश गन्ना संत के पीठ पर इतनी जोर से मारा कि उसके दो टुकड़े हो गये। संत तुकाराम जोर से हँसने लगे और कहा, 'अच्छा हुआ, अब एक टुकड़ा तुम्हारा, एक टुकड़ा मेरा!'

धन से आप कीमती रजाई खरीद सकते हैं, पर नींद नहीं खरीद सकते। मैं दुःखी था कि मेरे पास नये जूते नहीं हैं, फिर मैंने देखा एक भिखारी को। उसके तो पैर ही नहीं हैं, पथरीली सड़क पर हाथों के बल घिसटता हुआ भी वह कितना प्रसन्न है . . .

भय और वैराग्य

यदि भय और असुरक्षा की स्थिति हो तो इसका सामना कैसे करना चाहिए?

ऐसी स्थिति में तुम कुछ नहीं कर सकते क्योंकि कुछ अपवादों के अलावा लगभग सभी मनुष्यों की प्रवृत्ति भय और असुरक्षा की रहती है। मानव जाति का सहज स्वभाव असुरक्षा का है। आहार, भय, निद्रा और मैथुन मनुष्य की मूल प्रवृत्तियाँ हैं जो जन्म से मृत्यु तक साथ रहती हैं। लोग जब भयभीत होते हैं तो कुछ तात्कालिक उपाय करते हैं। भारत में लोग दुर्गा, काली या हनुमान जी के मंदिरों में जाते हैं। देखा जाय तो भय कोई यथार्थ चीज नहीं है, बस मन का भाव है, और इसलिए इसके निराकरण के लिए मनोभावनात्मक उपाय करने चाहिए।

भारत में लोग हर रोज सोने के पहले हनुमान चालीसा का पाठ करते हैं ताकि भूत-प्रेत का भय न सताये। भय तो कई प्रकार के होते हैं। किसी को रोग का भय है, तो कहीं धन खोने का भय है। किसी को कलंकित होने का भय है तो किसी को प्रतिस्पर्धा का भय है तो किसी को मृत्यु का भय है। ऐसे कई प्रकार के भय होते हैं। इनसे बचकर निकलना मुश्किल है, क्योंकि ये तो तुम्हारे चारों तरफ और अन्दर भी व्याप्त हैं। इसलिए उनसे लड़ने का कोई फायदा नहीं है, बस कोई मनोभावनात्मक उपाय खोजकर उस भय की स्थिति से कुछ देर बाहर निकल आना चहिए।

अपने यहाँ क्या होता है? भूत का भय होता है तो हनुमान चालीसा पढ़ लेते हैं, जब बीमारी आती है तो महामृत्युञ्जय मंत्र का जप करते हैं, दुश्मन से रक्षा के लिए दुर्गा पाठ करते हैं। जैसे वासना, ईर्ष्या, क्रोध या मोह मनोवैज्ञानिक अवधारणाएँ हैं उसी प्रकार भय भी है। तुम्हें इसका तोड़ खोजना पड़ेगा। अगर भय प्रत्यक्ष है, उसका कोई बाह्य कारण है, जैसे मुझे तुम से डर लगता है तो मैं तुम्हारा सामना करके उस डर का निदान निकाल सकता हूँ, लेकिन कई बार भय अप्रत्यक्ष और अमूर्त होता है। ऐसा भय पूरी तरह मनोभावनात्मक होता है, जिससे तुम निकल नहीं पाते। बाहरी परिस्थितियों का तो मुकाबला किया जा सकता है, तुम्हारे सामने कोई चोर या डाकू आ जाए तो तुम उससे निबट सकते हो, लेकिन तुम्हारे मन में चोर या डाकू का भय छा जाये तो

उस भय को निकालना बहुत मुश्किल हो जाता है। अधिकांश लोग ऐसे ही भयों से आक्रान्त रहते हैं जिनका कोई ठोस कारण नहीं रहता। घरों में बच्चे भूत-प्रेत के भय से डरे रहते हैं, कई लोगों को यही डर लगा रहता है कि कोई अनहोनी न हो जाए।

स्वामीजी, कई बार हम यह अच्छी तरह समझते हैं कि डरने की कोई बात नहीं है, लेकिन फिर भी जब भय का कारण सामने आ जाता है तो डर लगता ही है। जैसे आपका कुत्ता भोलेनाथ, उसके बारे में अपने आप को समझाता हूँ कि उसने काट भी लिया तो क्या होगा, एक-दो दिन दर्द ही तो रहेगा, लेकिन जब वह सामने आता है तो दिल की धड़कन बढ़ जाती है, डर सताने लगता है। इस तरह के भय के लिए क्या किया जाए?

हाँ, भोलेनाथ से तो सभी भय खाते हैं। कोई इस तरफ आने का साहस नहीं कर पाता। रही बात इस भय के निदान की तो इस बारे में सोचकर अपना वक्त बर्बाद मत करो। ऐसे भय का तो कोई निदान है नहीं। इसे उसी तरह चले जाने दो जैसे वह आता है। मनोवैज्ञानिक दृष्टि से भय एक रहस्य है

जो मनुष्य स्वभाव में निहित है। यह हर प्राणी की प्रकृति में निहित है, चाहे वह मानव हो या पशु-पक्षी या कीट-पतंग। सब में यह असुरक्षा की भावना रहती है। आहार, निद्रा, भय और मैथुन – ये चार मूल प्रवृत्तियाँ सब में समान रहती हैं।

तुम्हें भय इसलिए होता है क्योंकि तुम्हें ज्ञान नहीं है। अगर तुम्हें देश और काल का ज्ञान होता तो तुम्हें घटनाओं का भी ज्ञान रहता। अगर तुम्हारा देश और काल पर आधिपत्य हो जाए तो सभी क्रियाओं और घटनाओं पर भी हो जाए। जब देश और काल की बात करता हूँ तो तुम्हारे मन के दो-तिहाई अंश की बात करता हूँ। तुम्हारा मन तीन तत्त्वों से निर्मित है – देश, काल और वस्तु। यहाँ काल का मतलब घड़ी के घंटा, मिनट और सेकेण्ड से नहीं है। यहाँ मैं विज्ञान के सन्दर्भ में बात कर रहा हूँ, सामान्य बोलचाल की भाषा इस्तेमाल नहीं कर रहा हूँ। दर्शन की भाषा में, संस्कृत में इसे काल कहते हैं, इसी से काली और महाकाल शब्द निकले हैं।

मनुष्य को न तो काल के बारे में जानकारी है, न देश के बारे में, और न ही पदार्थ और वस्तु की। इसलिए उसे घटनाओं का भी ज्ञान नहीं है। उसे नहीं मालूम कि वह कब बीमार पड़ेगा, कब चोर उसके घर में घुसकर चोरी कर लेगा। ज्ञान का यह अभाव ही भय का कारण है। मुझे चिन्ता है कि शाम को कुछ खाने को मिलेगा या नहीं, लेकिन अगर मुझे मालूम हो जाए कि शाम को तुम मेरे लिए भोजन लेकर आओगे तो मुझे कोई भय नहीं होगा।

भय का कारण ज्ञान का यही अभाव है। दर्शन शास्त्र में ज्ञान के अभाव को अज्ञान कहते हैं। ज्ञान और अज्ञान शब्द प्रकाश और अन्धकार के भी द्योतक हैं। अब अगर कोई देश और काल पर नियंत्रण पा ले, उसे पूर्णरूपेण समझ ले तब वह अपने जीवन को भी नियंत्रित कर सकता है। लेकिन यह असम्भव है। मैं असम्भव शब्द का प्रयोग इसलिए कर रहा हूँ क्योंकि हमने इतिहास में देखा है कि राम, कृष्ण, बुद्ध, मूसा, ईसा मसीह और हमारे जीवन काल में महात्मा गाँधी जैसे महापुरुष भी सब कुछ नियंत्रित नहीं कर सके। उन्हें भी जन्म लेने पर वह सब भोगना पड़ा जो प्रकृति का नियम है। एक बार जब ईश्वर मनुष्य रूप में जन्म ले लेते हैं, तो उन्हें भी प्रकृति के नियमों के अधीन ही जीना पड़ता है। यह वैसा ही है जैसे तुम भारत में प्रवेश करते ही भारतीय कानूनों के अधीन हो जाते हो या ग्रीस जाने पर तुम्हें उस देश के कानून के अधीन ही रहना होगा या उत्तर ध्रुव जाने पर वहाँ के ठण्ढे वातावरण

को झेलना ही होगा। प्रकृति का नियम सब पर लागू है, इससे कोई भी मुक्त नहीं है। हमारे दर्शनों में यही कहा गया है।

ऐसे योगी और महात्मा, जो यह जानते हैं कि भविष्य के गर्भ में क्या है या भूतकाल में क्या घटित हुआ है, वे भी सब कुछ नियंत्रित नहीं कर सकते, क्योंकि यह सब किसी उच्च सत्ता के अधीन है। इसलिए इस तरह के भय तो रहेंगे ही। सब को इनसे गुजरना ही पड़ता है। कभी-कभी ये भय कई गुना बढ़ जाते हैं तो कभी बहुत हल्के भी हो जाते हैं। यह सब तुम्हारे धर्म, संस्कृति और समाज पर निर्भर करता है। पाश्चात्य जगत् में असुरक्षा की भावना ज्यादा है, पूर्वी देशों में यह कम है। पूर्वी जगत् में लोगों ने असुरक्षा के कई पक्षों को सामाजिक स्तर पर सुलझा लिया है, लेकिन पश्चिम में ऐसा नहीं हो पाया है क्योंकि उनका समाज वहाँ की धार्मिक मान्यताओं पर आधारित है। ये मान्यताएँ क्या हैं? पहली तो यह कि तुम्हारे लिए यही पहला और आखिरी जन्म है। वे पुनर्जन्म में विश्वास नहीं करते। इसलिए मौत आने के पहले वे सब कुछ कर लेना चाहते हैं, सभी कर्म पूरे कर लेना चाहते हैं। यहाँ हम लोग मानते हैं कि अभी नहीं तो अगले जन्म में ही सही, कोई समस्या नहीं। दुबारा मौका मिल जाएगा।

दूसरी बात यह कि यहाँ बचपन से हमें सिखाया जाता है कि अपने माता-पिता की देखभाल करना हमारा धर्म है, इसी से पुण्य मिलेगा। श्री राम या श्रवण कुमार की कथायें हमें उदाहरण स्वरूप बतायी जाती हैं। इसलिए यहाँ माता-पिता को किसी प्रकार की असुरक्षा की भावना नहीं रहती क्योंकि वे जानते हैं कि उनके बच्चे बुढ़ापे में उनकी देखभाल जरूर करेंगे। हाँ, कुछ अपवाद हो सकते हैं, विशेषकर आधुनिक समाज में, लेकिन सामान्य रूप से वृद्ध माता-पिता की देखभाल उनके बच्चे करते ही हैं। पश्चिम में यह बहुत बड़ी समस्या है। इसलिए वहाँ वृद्धाश्रम होते हैं, ओल्ड एज होम होते हैं। लेकिन सब जगह ऐसा नहीं हो पाता, आधे यूरोप में वृद्धाश्रम नहीं हैं।

इस तरह कई सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक कारण होते हैं जिनसे भय की वृद्धि होती जाती है, लेकिन अगर आदर्श समाज भी हो तो भी तुम्हारे भीतर भय होगा। भारत में एक प्रसिद्ध राजा हुए हैं, भर्तृहरि। एक बार उन्हें एक सुन्दर फल मिला जिसे उन्होंने अपनी रानी को दिया। रानी किसी अन्य व्यक्ति से प्रेम करती थी, उसने वह फल अपने प्रेमी को दे दिया। वह व्यक्ति भी किसी अन्य औरत को चाहता था, उसने वह फल उसे दे दिया। वह औरत

राजा भर्तृहरि को चाहती थी, इसलिए उसने वह फल राजा को ही दे दिया! राजा भर्तृहरि ने जब कामदेव की यह लीला देखी तो वह चकरा गया। उस पर ऐसा प्रभाव पड़ा कि उसने अपना राज-पाट त्याग दिया और गुरु गोरखनाथ का शिष्य हो गया। गुरु गोरखनाथ ने भर्तृहरि को नाथ पंथ में दीक्षित किया। ये कनफटा योगी भी कहलाते हैं क्योंकि इनके कान में छेद कर दीक्षित किया जाता है। भर्तृहरि तपस्या के लिए राजस्थान के माउँट आबू में चले गये। वहाँ अभी भी भर्तृहरि गुफा है। उनकी कहानी काफी लम्बी है। उन्होंने संस्कृत में तीन सौ श्लोक लिखे जिनमें सौ वैराग्य पर, सौ नीति पर और सौ श्लोक शृंगार रस पर हैं। इन्हें वैराग्य शतक, नीति शतक और शृंगार शतक कहते हैं। वैराग्य शतक में एक जगह उन्होंने लिखा है –

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

यदि तुम भोगमय जीवन बिताओगे तो रोग का भय तुम्हें निश्चित रूप से सतायेगा, लेकिन यदि तुम अपनी भोग की प्रवृत्ति पर अंकुश रख सकोगे तो रोग का भय नहीं होगा। भय स्वयं तो निराकार होता है, लेकिन मन में एक आकार ग्रहण कर लेता है, जो इस परिस्थिति में रोग का भय होता है। *कुले च्युतिभयं* – अपने कुल-परिवार पर ज्यादा ध्यान दोगे, अपने आप को ऊँचा समझोगे तो कुल से च्युत होने का, नाक कट जाने का भय तो होगा ही। *वित्ते नृपालाद्भयं* – अगर तुम्हारे पास बहुत धन हो तो आयकर विभाग के अफसरों का भय तो होगा ही। पूर्वकाल में राजा का भय होता था क्योंकि उसे अगर पता चल जाता कि इस व्यक्ति के पास अधिक धन है तो वह अपना दल-बल भेजकर उसे ले लेता था, लेकिन अब आयकर अधिकारी का डर है। इस तरह इस श्लोक में बहुत-सी बातें कही गयी हैं। निष्कर्ष यही कि इस जीवन में किसी भी रूप में रहो, भय तो होगा ही – *सर्वं वस्तु भयान्वितं।* केवल वैराग्य में ही व्यक्ति निर्भय रहता है, बाकी सब चीजों से भय उत्पन्न होता है – *वैराग्यमेव अभयम्*।

अब यह वैराग्य क्या है? उन सब चीजों के प्रति कामना और वासना पर नियंत्रण जिन्हें तुमने देखा या सुना है। किसी को पत्नी से प्यार है, बच्चे से प्रेम है, कोई धन की इच्छा रखता है, किसी को अपने सुन्दर घर से ममता है, कोई रूस गया तो वहाँ अच्छा लगा – यह सब राग है और इस तरह के सभी इन्द्रिय विषयों के प्रति राग के बजाय नियंत्रित भाव रखना वैराग्य है। राग का मतलब सनक, एक ही बात दिमाग में घूमती रहती है और मन हमेशा उसी के पीछे भागता रहता है। वैराग्य हो जाए तो वह सनक छूट जाती है, व्यक्ति निर्भय हो जाता है। लेकिन तुम जोर-जबरदस्ती करके वैरागी नहीं बन सकते। वैराग्य की स्थिति मनुष्य के विकासक्रम में एक निश्चित अवस्था है। जैसे केवल बालों को सफेद रंग लेने से कोई बूढ़ा नहीं हो जाता, बूढ़ा होने के लिए साठ की उम्र पार करनी होगी, उसी तरह तुम वैराग्य का स्वांग भले ही रच सकते हो, लेकिन तुम सच्चे वैरागी तब तक नहीं होगे जब तक तुम्हारा जीवन विकास की एक निश्चित अवस्था तक पहुँच नहीं जाता। वैरागी केवल किसी सम्प्रदाय, परम्परा या विचारधारा का नाम नहीं, यह कोई अभ्यास भी नहीं, बल्कि यह एक परिपक्व मन की स्वाभाविक अभिव्यक्ति है।

– 21 मार्च 1998, रिखियापीठ

वैराग्य विहार

भर्तृहरि के वैराग्य-शतक के मुख्य श्लोकों का भावानुवाद स्वामी सत्यानन्द जी ने अपने पूर्वाश्रम में किया था, इनका रचना काल मई 1938 है और स्थान है भिकियासेन, अल्मोड़ा जिले में स्वामीजी का पैतृक गाँव। यहाँ कुछ श्लोकों का भावानुवाद प्रस्तुत किया जा रहा है। यह रचना उनके भावी संन्यास की दिशा का स्पष्ट संकेत देती है। —सम्पादक

भोगा न भुक्ता वयमेव भुक्ताः
तपो न तप्तं वयमेव तप्ताः।
कालो न यातो वयमेव याताः
तृष्णा न जीर्णा वयमेव जीर्णाः॥

भोग नहीं हैं भोगे हमने, भोगों से ही हम भुक्त बने,
ताप नहीं हैं तापे हमने, तापों से ही हम तप्त बने।
काल नहीं हा बीत चुका है, हम ही बीत चुके हैं सारे,
तृष्णा जीर्णा नहीं हुई रे, हम ही जीर्ण बने हैं प्यारे॥

आशा नाम नदी मनोरथजला तृष्णातरंगाकुला
रागग्राहवती वितर्कविहगा धैर्यद्रुमध्वंसिनी।
मोहावर्तसुदुस्तरातिगहना प्रोत्तुंगचिन्तातटी
तस्याः पारगता विशुद्धमनसो नन्दन्ति योगीश्वराः॥

आशा-सरिता नीर-मनोरथ औ' तृष्णा की लहरें आतीं,
स्नेह मकरयुत् तर्क विहग हैं धीरज-द्रुम को ढाती आतीं।
मोह भंवर युत दुस्तर गहन महतर चिन्ता उसके तट हैं,
उसको तर कर शुद्ध-मननरत नन्दित होते योगीश्वर हैं॥

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं
माने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम्।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम्॥

भोग में रोग, कुल में च्युति-भय, रहता है धन में नृप का भय,
मौन में दैन्य, बल में रिपुभय, सुन्दरता में वृद्ध-वयस भय।
शास्त्र के वाद, गुण में खलभय, काया में हैं मरने का भय,
सर्व-वस्तु भययुत् जग-नर की, 'वैराग्य' कहा है एक 'अभय'॥

आदित्यस्य गतागतैरहरहः संक्षीयते जीवितं
व्यापारैर्बहुकार्यभारगुरुभिः कालोऽपि न ज्ञायते।
दृष्ट्वा जन्मजराविपत्तिमरणं त्रासश्च नोत्पद्यते
पीत्वा मोहमयीं प्रमादमदिरामुन्मत्तभूतं जगत्॥

सूर्योदय होता रजनी आती, ऐसे जीवन घटता जाता,
बहु व्यापारों, कार्यभार से कल नहीं है जाना जाता।
जन्म-मरण औ' विपद्-जरा लख, नहीं त्रास का उद्भव होता,
पीकर मोहक मादक मदिरा उन्मादित रे यह जग होता॥

धैर्यं यस्य पिता क्षमा च जननी शान्तिश्चिरं गेहिनी
सत्यं मित्रमिदं दया च भगिनी भ्राता मनःसंयमः।
शय्या भूमितलं दिशोऽपि वसनं ज्ञानामृतं भोजनं
ह्येते यस्य कुटुम्बिनो वद सखे कस्माद् भयं योगिनः॥

धीरज पिता औ' क्षमा माता, नीरवता है जिसकी नारी,
सत्य मित्र है, दया बहिन है, मन का संयम जिसका भाई।
शय्या क्षिति तल, दिशा वसन हैं, ज्ञान-सुधा का भोजन भर हो,
ऐसा जिसका परिवार कहो, किससे हो भय फिर योगी को॥

कल्पतरु है मेरा आश्रम

संन्यासी आनन्दरत्नम्, पटना

मेरे गुरु, श्री स्वामी सत्यानन्द जी का आश्रम सदा से मेरे लिए आनन्द का पर्याय रहा है। वहाँ के कण-कण में सकारात्मक ऊर्जा के स्पंदन का अनुभव किया जा सकता है। मुझे तो लगता है मानो आश्रम कल्पतरु हो। उसकी छाया में जाने वाले व्यक्ति का न केवल बाह्य जीवन, बल्कि आन्तरिक जीवन भी रूपान्तरित हो जाता है।

श्री स्वामीजी कहते थे कि आश्रम श्रम करने का स्थान है। वस्तुत: यहाँ हर प्रकार के श्रम और सेवा के माध्यम से कर्मयोग के सुनहरे अवसर प्राप्त होते हैं। रसोईघर में सब्जी छीलनी-काटनी हो, ब्रेड बनानी हो, कहीं सफाई करनी हो, विभिन्न विभागों में विविध प्रकार की सेवायें हों – आश्रम में सभी परिश्रम और निष्ठा के साथ कर्मयोग करते हैं। सामुदायिक रूप से कार्य करना अत्यन्त आनन्ददायक होता है।

वर्ष 2023 में श्री स्वामीजी का शताब्दी महोत्सव मनाया जायेगा। उसके लिए तैयारियाँ आरम्भ हो गयी हैं। इसी क्रम में अनेक पुस्तकों का प्रकाशन होना है। श्री स्वामीजी के प्रारम्भिक सत्संग, जो अब तक प्रकाशित नहीं हो पाये हैं, सैकड़ों की संख्या में हैं। उन्हें प्रकाशित किया जायेगा ताकि विभिन्न विषयों पर उनके बहुमूल्य विचार जन-सामान्य तक पहुँच पायें।

वास्तव में उनके ये सत्संग ज्ञान के अक्षय भण्डार हैं। उस अक्षय भण्डार में प्रवेश करने का सुअवसर मुझे भी प्राप्त हुआ। चूँकि सत्संगों को पुस्तक का रूप देने के लिए उनमें किंचित् सम्पादन की आवश्यकता होती है, इसलिए इस काम में लगे हुए सभी लोग तन्मयता और सजगता के साथ उसे समय पर पूरा करने का प्रयास कर रहे हैं। पूरे हिन्दी विभाग का वातावरण ऐसा लगता है, जैसे वहाँ कोई महायज्ञ हो रहा हो और सब अपनी ओर से आहुतियाँ डाल रहे हों। मैंने भी सम्पादन के रूप में अपनी ओर से उसमें आहुति डाली।

सम्पादन के क्रम में सत्संगों को पढ़ते समय ऐसा लगा जैसे श्री स्वामीजी का जीवन्त सत्संग हो रहा हो। उनके बोलने की शैली, उनका हँसना और

उनका अचानक गम्भीर होकर चुप हो जाना, फिर कोई गम्भीर-गूढ़ बात कहना – सब आँखों के सामने चित्र की तरह तैरने लगता था। उनकी सूक्ष्म उपस्थिति की अनुभूति मुझे अनुगृहीत करती रही।

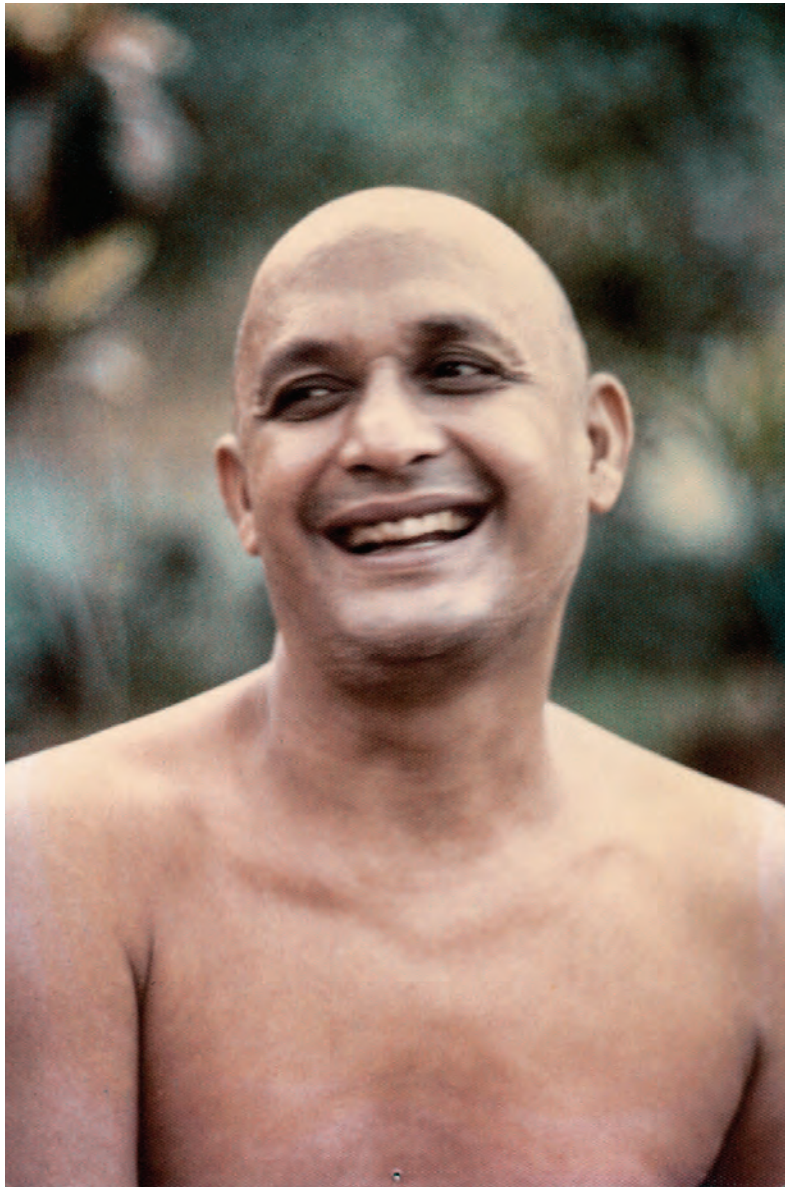

मानव सेवा ही माधव सेवा है

ईश्वर का अनुभव वैसे ही होना चाहिए जैसे वे हैं। जब तुम दूसरे की सेवा करते हो तो वास्तव में तुम अपनी ही सेवा कर रहे हो, अपने से ही एकता का अनुभव कर रहे हो। दूसरों की सेवा किये बिना यह कहने का कोई फायदा नहीं कि मुझे सबसे एकता का अनुभव होता है। सबके साथ एकता का अनुभव करने के लिए तुम्हें दूसरों के सुख-दु:ख को वैसा ही अनुभव करना होगा जैसे वे अपने सुख-दु:ख हों। माँ अपने बच्चे की पीड़ा का अनुभव क्यों करती है? इसलिए कि वह उससे जुड़ी है, उसके साथ एकात्मकता है। जब तुम भी प्रेम के माध्यम से दूसरों के साथ जुड़ जाओगे तो यह ईश्वर-साक्षात्कार का एक निश्चित संकेत होगा। यह मैं अपने अनुभव से कह रहा हूँ, किताबी बातें नहीं बोल रहा हूँ। जब मैं ऋषिकेश में अपने गुरु, स्वामी शिवानंद जी के आश्रम में रहता था तो कुष्ठरोगियों की देखभाल करता था, लेकिन मेरे हृदय में करुणा या सेवा की गहरी भावना नहीं थी। वह सब करता था क्योंकि गुरुजी का आदेश था। मुंगेर में भी मैं इस तरह के काम करता था, कुष्ठरोगियों को भोजन करवाता था, गाँवों में राहत कार्य के लिए संन्यासियों को भेजता था, लेकिन इन कार्यों में मेरी भावना गहराई से नहीं जुड़ी थी। बस बिहार योग विद्यालय के अध्यक्ष में रूप में यह सब करता था। लेकिन रिखिया आने के बाद से मेरी भावना पूरी तरह बदल गयी है।

कलियुग में साधना के दो ही मार्ग हैं – भगवन्नाम का जप-कीर्तन और गरीबों की सेवा-सहायता। आसन-प्राणायाम क्या है? उसे थोड़ा कर लो, आँखे बंद करके थोड़ा ध्यान कर लो, थोड़ी पूजा कर लो तो थोड़ी देर के लिए अच्छा लगता है, पर वह

रास्ता नहीं है। वह तो कोल्हू के बैल का चक्कर है। बैल दिनभर घूमता है, फिर भी वहीं पर रहता है। योग का अभ्यास करने वाले सभी लोग कोल्हू के बैल की तरह चक्कर काटते रहते हैं, पर दस-बीस साल के बाद भी वहीं रहते हैं। कहते हैं, 'स्वामीजी, मन तो एकाग्र होता ही नहीं।' वह होगा भी नहीं। मन को एकाग्र नहीं किया जा सकता। मन को केवल उन चीजों पर लगाना चाहिए जिनसे दूसरों का भला हो। दूसरों का भला सोचो, दूसरों के पेट के बारे में सोचो, दूसरों की बीमारी के बारे में सोचो, गरीबी के बारे में सोचो, अपने बारे में तो सोचना ही छोड़ दो। भगवान तुम्हारा ख्याल रखेंगे।

– 21 मार्च 1998, रिखियापीठ

धर्म की आत्मा – श्री स्वामीजी

संन्यासी धर्मवाणी, संयुक्त राज्य अमेरिका

श्री स्वामी सत्यानन्द जी की शिक्षाओं की खुशबू फैलती हुई हमारे बचपन को भी महका गई थी। उनके संकल्पित भावों से अनेकों जीवनों को सहारा और मार्गदर्शन मिल रहा था। उन अनेकों जीवनों में से एक हमारे स्वर्गीय पिता, श्री के.एम. अग्रवाल भी थे।

1960 और 1970 की दशकों में फाँसी और आजीवन कारावास की सजाएँ न्यायपालिका प्रणाली का अभिन्न हिस्सा हुआ करती थीं, और अपने पद की प्रतिष्ठा में मेरे पिताजी जब कभी ऐसी कानूनी कार्रवाई करते तो उनका स्वास्थ्य बिगड़ जाता था। ऐसे मानसिक द्वंद्व और संघर्ष के क्षणों में वे श्री स्वामीजी से मार्गदर्शन लिया करते थे।

कुछ एक बार वे छुट्टी लेकर श्री स्वामीजी के पास रहकर षट्कर्म आदि करके ऊर्जा से भरपूर होकर वापस आते और सीखे हुए अभ्यासों को

नियमितता से किया करते थे। हम बहनें और भाई भी कभी-कभी आसनों को देखा-देखी कर लेते थे, लेकिन उन आसनों में निहित शक्ति में हमारी निष्ठा को पिताजी के प्रमाणित अभ्यासों ने पक्का कर दिया था। इस तरह श्री स्वामीजी के योग रूपी बीज हमारे अंदर पड़ चुके थे और समय आने पर उसी बीज ने प्रफुल्लित होकर मेरा मार्ग निर्देशित करते हुए मुझे मेरे प्रिय गुरु, श्री स्वामी निरंजनानंद सरस्वती से मिलाया।

सन् 1990 में पिताजी पूर्ण अवकाश प्राप्त कर मुंगेर आकर स्थायी तौर पर रहने लगे थे। उन दिनों श्री स्वामीजी ने 'क्षेत्र संन्यास' ले लिया था और बिहार योग विद्यालय को एक विश्वव्यापी संस्था बनाकर उसका परित्याग कर चुके थे। ऐसा कहते हुए श्री स्वामीजी का जीवन उन महान् राजाओं से भी दिव्य प्रतीत होता है जो अपना सर्वस्व त्याग कर आत्मानुभूति की खोज में तपने को निकल पड़ते थे। श्री स्वामीजी पर मेरी अटूट श्रद्धा के कई कारणों में से एक उनका प्रबल वैराग्य भाव रहा और आज भी उनकी उस अद्भुत वैराग्यवान् अवस्था को सोचते हुए हृदय नहीं थकता है।

सन् 1988 से 1995 तक मैं अपने पति और बच्चों के साथ सउदी अरब में रही, जहाँ रहते हुए ऐसा लगता था जैसे हमारे भगवान हमसे दूर हो गए हैं। कारण, वहाँ मंदिर नहीं होते थे और भगवान के फोटो साथ ले जाने की भी मनाही थी। ऐसे में श्री स्वामीजी की किताबें और प्रसाद रूप में मिले हमारे गुरुदेव, जीवन को चलाने के दो सुंदर और सुदृढ़ पतवार जैसे बन गए।

श्री स्वामीजी की बृहत् शिक्षाओं में से एक शिक्षा चरित्र निर्माण करने की रही और उसके लिए उन्होंने हर घर में श्री रामचरितमानस और श्रीमद्भगवद्गीता का होना परम आवश्यक बताया। चूंकि यह बात श्री स्वामीजी ने कही थी, तो मेरी इन ग्रंथों को पढ़ने की इच्छा भी जाग गई।

जिस तरह श्रीराम और श्रीकृष्ण की जीवन लीलाओं और उनके चरित्र के आलोक में अपनी सारी समस्याओं के ओछेपन और स्वनिर्मित होने का भान होने लगता है, ठीक कुछ ऐसा ही श्री स्वामीजी की चरित्र की आभा और उनके दर्शन से भी होता था। उनके दर्शन मात्र ने मेरे जैसे पता नहीं और कितने लोगों की समस्याओं का समाधान किया होगा। इस बात से मुझे एक घटना का संस्मरण हो आया है, जब सन् 2004 में हमारी माँ, पिताजी, मैं और मेरे पति श्री स्वामीजी के दर्शनार्थ रिखिया गए थे। उस समय मेरी माँ का अनुभव विस्मयकारी ही है।

उन दिनों माँ के पेट में गोल्फ बॉल के आकार का एक कष्टदायक उभार आ गया था। जहाँ कोई इलाज और दवा काम नहीं आई वहाँ श्री स्वामीजी के दर्शन, बातचीत और शुभ आशीर्वाद के कुछ ही दिनों में वह उभार और कष्ट, दोनों ही गायब हो गए! ऐसे संत की कल्याणकारी उपस्थिति और उनका आशीर्वाद आज भी माँ के हृदय में जीवंत है। हमारी माँ अपनी इक्यानवे साल की पक्की अवस्था में भी श्री स्वामीजी और हमारे गुरुदेव के संकलित सत्संगों, भजनों और कीर्तनों को सुनते हुए आनंदित रहती हैं।

अंत में इतना ही कहूँगी कि हमारे श्री स्वामीजी परम योगी तो थे ही, साथ ही उनमें समाज में फैली हुई भ्राँतियों को अपने सहज और सटीक बातों से सुधार देने की अद्भुत क्षमता थी। श्री स्वामीजी इस धरती पर ऐसे सूर्य थे जिसने अपने ज्ञान और तप से विश्व के कोने-कोने को आलोकित कर दिया। हमारा शत-शत नमन है ऐसे अवतारी पुरुष को जिनके योग और अमरत्व का मार्ग इस धरती पर आने वाली सदियों में अनगिनत लोगों का पथ-प्रदर्शन करता रहेगा।

air
terminal

सत्यम् वाणी

हर धर्म और सम्प्रदाय के अपने निश्चित विधि-विधान होते हैं और भारत में तुमको उनका सम्मान करना होगा। तुम उन पर प्रश्नचिह्न नहीं लगा सकते। सबके लिये एक प्रकार के नियम नहीं हो सकते। यदि एक ही प्रकार के नियम सबके लिये बना दोगे तो वह तानाशाही हो जायेगा। किसी भी देश या समाज में विविधता होनी चाहिये और विविधता में ही एकता की अनुभूति प्राप्त करनी चाहिये।

यहाँ देवघर के वैद्यनाथ मन्दिर में कोई भी बेरोक-टोक जा सकता है। मुसलमान भी जा सकते हैं और ईसाई भी। इसी प्रकार भारत में और भी कई मन्दिर हैं जहाँ कोई भी प्रवेश पा सकता है, लेकिन कुछ ऐसे भी स्थान हैं जहाँ हर कोई नहीं जा सकता। इसके कारण भी हैं। जगन्नाथपुरी में वैष्णव मन्दिर है, वहाँ भगवान कृष्ण अपनी बहन सुभद्रा और भाई बलराम जी के साथ विराजमान हैं। वैष्णव मत के नियमानुसार तुम अपने शरीर पर चमड़े की बेल्ट, जूते वगैरह धारण नहीं कर सकते, क्योंकि वे पशु-चर्म से निर्मित होते हैं। वैष्णव परम्परा में पशु-चर्म से निर्मित कोई सामग्री मन्दिर में प्रवेश नहीं पा सकती। यह इसलिये कि निरीह पशुओं की, विशेषकर गो-धन की हत्या न की जाये। मोटेतौर पर यह दर्शन पशु-धन की सुरक्षा पर आधारित है। लोग पशुओं की हत्या करके उनके चमड़े से जूते-चप्पल तैयार करते हैं और हम-तुम उन्हें खरीद कर उपयोग में लाते हैं। लेकिन इस दर्शन के माध्यम से पशु-वध पर नियंत्रण होता है।

दूसरा नियम यह जान लो कि स्नान करके ही देवालय में प्रवेश करना है। वैष्णवों के लिये यह परमावश्यक शर्त है। वैष्णव प्रातःकाल शौच कर लेता है। वह ऐसा नहीं कह सकता कि दिन में दो बजे स्नान करूँगा या बिना शौच के ही दिन भर रह लूँगा। सर्वप्रथम प्रातः उसे शौच करना है और तब उसके बाद चाय, दूध या अल्पाहार ग्रहण करना है। यदि मांसाहारी को किसी दिन देवालय जाना है तो उस दिन उसे मांसाहार नहीं ग्रहण करना है।

ये कुछ नियम हैं जिनका पालन हिन्दू करते हैं, क्योंकि बचपन से ही उन्हें इसकी शिक्षा प्राप्त रहती है। दूसरों में इस प्रकार के नियम नहीं हैं। वे गिरजाघर में जूते-चप्पल पहनकर बे-खटके जा सकते हैं। इस कारण वे यह समझ नहीं

पाते कि जगन्नाथ मन्दिर में चमड़े के थैले आदि लेकर जाने से क्यों मना किया जाता है। वे यह भी नहीं समझ सकते कि मांस खाकर मन्दिर में क्यों नहीं जाना चाहिये, इसलिये वे इस प्रकार के प्रश्न पूछ बैठते हैं कि चर्म-निर्मित सामग्री के साथ मन्दिर में प्रवेश क्यों वर्जित है? कोई हिन्दू यह प्रश्न नहीं करता है।

तीसरा नियम यह है कि रजस्वला स्त्रियाँ वैष्णव मन्दिर में या तुलसी-चौरा के पास नहीं जातीं। यहाँ इन सारे नियमों को लोग बखूबी जानते हैं क्योंकि ये नियम उनके मन में रस-बस गये हैं। धर्माचार्यों ने एक सामान्य नियम बना दिया है जिसका अनुसरण सबको करना है। पूरे इतिहास में, कम-से-कम 5000 वर्षों के ऐतिहासिक काल में एक ही धर्म है जिसमें शाकाहार को प्रचारित किया गया है। दूसरे धर्मो में इसका कोई महत्त्व नहीं है। तुम शाकाहारी हो कि मांसाहारी, कोई फर्क नहीं पड़ता। तुम मदिरा पान करो या न करो, कोई फर्क नहीं पड़ता, परन्तु हिन्दू धर्म में ऐसा नहीं हो सकता। इसके पीछे 5000 वर्षों का इतिहास है।

हाँ, भारत में ऐसे मन्दिर भी हैं जहाँ पशु-बलि की प्रथा प्रचलित है, लेकिन वे शाक्त सम्प्रदाय के लोग हैं, वैष्णव नहीं। कलकत्ते के काली मन्दिर में बकरों की बलि दी जाती है। शाक्त बलि देते हैं और मांसाहार करते हैं। यह अलग सम्प्रदाय है। भारत में पाँच मुख्य सम्प्रदाय थे – शैव, शाक्त, वैष्णव, सौर और गाणपत्य, जिनमें से अंतिम दो समाप्त हो गये। अब तीन महत्त्वपूर्ण सम्प्रदाय शेष हैं। वैष्णव सम्प्रदाय से ही दो महान् धर्मों, जैन और बौद्ध धर्म का प्रादुर्भाव हुआ। इन दोनों धर्मों के अनुयायी शाकाहारी हुये। वे पशु-बलि के खिलाफ बराबर आवाज लगाते रहे हैं, वे अहिंसावादी हैं।

नेपाल के पशुपतिनाथ मन्दिर में भी गैर-हिन्दू नहीं जा सकते, ऐसा क्यों?

हाँ, पशुपतिनाथ मन्दिर में यह नियम है। भारत में भी ऐसे कई मन्दिर हैं जहाँ गैर-हिन्दू नहीं जा सकते। पारसियों के देवालय में भी अन्य धर्मावलम्बी नहीं जा सकते। भारत में एक बड़ी शक्तिशाली संन्यास परम्परा का मैं गुरु हूँ, लेकिन मुझे भी पारसी मन्दिर में प्रवेश नहीं मिलेगा क्योंकि मैं पारसी नहीं हूँ। मैंने एक बार पारसी मन्दिर में प्रवेश के लिये प्रयास किया था। पारसी सम्प्रदाय के लोगों ने मेरे प्रवेश का अनुमोदन भी किया था, लेकिन पुजारी ने मना कर दिया, बताया कि यही नियम है। पुजारी मेरा मित्र है, बहुत-से पारसी परिवार भी मेरे मित्र हैं, लेकिन पारसी पूजा-गृह में दूसरों का प्रवेश वर्जित है, इसलिये आज

तक मैंने पारसी मन्दिर नहीं देखा। इसलिए हमे नियमों को मानना चाहिये। परम्पराओं को भंग करने का कोई अभिप्राय नहीं है। हिंदू शव को जला देते हैं, ईसाई और मुसलमान मिट्टी के अन्दर दफना देते हैं और पारसी लोग अपने शान्ति स्तूप पर डाल देते हैं। इस प्रकार विभिन्न धार्मिक सम्प्रदायों में भिन्न-भिन्न परम्परायें हैं। पारसी परम्परा में शव को नष्ट नहीं करते।

शाकाहार और मांसाहार में क्या भेद है? आखिर पौधों का भी विकास होता है, उनमें भी प्राण हैं, फिर उन्हें क्यों काटते हैं?

शाकाहार और मांसाहार के बारे में तुम्हारी सोच अलग है। तुम जीवन के बारे में सोचते हो, जबकि शाकाहार करने और मांसाहार न करने का बड़ा सीधा कारण है। शेर, बाघ, चीता, तेन्दुआ, ये सब मांसाहारी जानवर हैं। एक बाघ दूसरे मरे हुए बाघ का मांस नहीं खाता। शेर, चीता या तेन्दुआ भी इसी तरह करते हैं। वे हिरण या गाय-भैंस की तलाश में रहते हैं। ये पशु घास खाते हैं। मांसाहारी जानवर ऐसे पशुओं का शिकार करते हैं जो शाकाहारी हैं। वे मांसाहारी पशु का शिकार नहीं करते। ऐसा क्यों? इसलिए कि मांसाहारी पशुओं के शरीर में रोगाणुओं और विषाणुओं की भरमार रहती है और उनका मांस भी स्वादिष्ट नहीं होता। अगर तुम किसी कुत्ते को भेड़ का मांस दोगे तो वह खायेगा, लेकिन उसके सामने शेर का मांस परोस दो तो नहीं खायेगा। पशुओं के शरीर में बहुत-से रोग होते हैं, मानव-शरीर से कहीं अधिक। तुम उन्हें नंगी आँखों से तो नहीं देख सकते। पशुओं के रसायन भी भिन्न हैं। पशु-मांस का आहार करके तुम पशु-शरीर के रसायनों का आहार करते हो, उन्हें अपने शरीर में अवशोषित करते हो। यही कारण है कि शाकाहार और मांसाहार में बड़ा भेद है।

दूसरी बात यह कि जब तुम पशु-वध करते हो तो प्राकृतिक संतुलन को विचलित करते हो। इस धरती पर पाँच अरब लोग रहते हैं। अगर एक अरब लोगों का आहार पशु-मांस हो तो सारा पशु-जगत् नष्ट हो जायेगा। पालक, बैंगन या टमाटर पैदा करने में दो-तीन महीने लगते हैं और बड़ी मात्रा में हरी सब्जियाँ प्राप्त हो जाती हैं, लेकिन एक जानवर को तैयार करने में कई साल लग जाते हैं। इस प्रकार पशु जगत् और वनस्पति जगत् के विकास में भिन्नता है। दोनों का गणित भिन्न है, और अगर हर आदमी मांसाहारी बन जाये तो प्रकृति में अव्यवस्था फैल जायेगी। सभी जीव प्रकृति का सन्तुलन बनाये रखने में मदद करते हैं। अगर तुम सभी सांपों को मार दोगे तो चूहों की संख्या में वृद्धि हो जायेगी, मेंढकों की बाढ़ आ जायेगी। अगर तुम बाघ मार दोगे तो हिरणों की संख्या बढ़ जायेगी। वे एक दूसरे को सन्तुलित करते हैं। यही प्राकृतिक सन्तुलन है, प्रकृति के द्वारा प्रकृति का सन्तुलन।

मनुष्य को जीवन धारण करना है तो उसके लिये कुछ आहार तो लेना ही है। अगर तुम्हें अलास्का या ग्रीनलैण्ड या नॉर्वे के उत्तर भाग में जाना पड़े तो

क्या करोगे? वहाँ के लोग कैसे रहते हैं? वे मछलियाँ खाकर जीते हैं, क्योंकि वहाँ कुछ और नहीं होता। यूरोप के देशों में भी एक-दो हजार साल पहले मांसाहार करना पड़ता था, क्योंकि वहाँ कोई फसल नहीं होती थी, बर्फ-ही-बर्फ थी। पेड़ों से पत्तियाँ झड़ जाती थीं, वे नंगे हो जाते थे। कुछ होता ही नहीं था वहाँ। अब तो परिस्थितियाँ बदल गयी हैं। अब वहाँ ग्रीन-हाऊस हैं, जिनमें फसलें होती हैं और बहुत-सी चीजें विदेशों से आयात भी करते हैं। अफ्रीका, एशिया और भारत से बड़ी मात्रा में खाद्यान्न का आयात करते हैं।

इसलिये जहाँ मांसाहार की आवश्यकता होती है, वहाँ लोग मांस-भक्षण ही करते हैं। भारत में भी सभी लोग शाकाहारी नहीं हैं, मांसाहार करने वाले लोग भी हैं। पंजाबी, सिन्धी और बंगाली लोग मांसाहारी होते हैं। प्राचीन भारत में ब्राह्मणों को भोज का निमंत्रण मिलता था तो उसमें मांसाहार अनिवार्य माना जाता था। हम लोग मांसाहार के विरुद्ध नहीं बोलते, तुम्हारा धर्म मांसाहार के विरुद्ध नहीं बोलता, बस इतना है कि शाकाहार मानव-शरीर के लिये उपयुक्त आहार है। ऐसा भी कह सकते हो कि मानव शरीर शाकाहार के लिये ही उपयुक्त है।

ऐसा क्यों? इसके प्रमाण हैं। सबसे पहले पशुओं के दाँतों को देखो। मांसाहारी जानवरों के दाँत नुकीले और तीखे होते हैं। तुम्हारे दाँत वैसे नहीं होते, बल्कि गाय, घोड़ा, बकरी, हिरण और ऊँट जैसे शाकाहारी पशुओं के दाँत जैसे होते हैं। हमारे दाँत चबाने वाले दाँत होते हैं, कुत्तों के दाँत चबाने वाले दाँत नहीं होते। उनके दाँत तोड़ने वाले और चीरफाड़ करने वाले होते हैं। यह एक प्रमाण है कि हमारा शरीर शाकाहारी शरीर है।

दूसरा प्रमाण आँतों का है। सभी मांसाहारी पशुओं की आँतें छोटी होती है, जबकि सभी शाकाहारी जीवों की, मनुष्यों की आँतें बड़ी लम्बी होती हैं। यह प्रकृति का विधान है। इसलिए भी हमारा शरीर शाकाहारी है। तीसरा प्रमाण पेट की अम्लता का है। प्रकृति ने कुत्ते का शरीर मांसाहारी बनाया है। सभी मांसाहारी पशु कुत्ते की भाँति आहार को चबाकर नहीं खाते, निगल कर खाते हैं। हड्डियों को भी निगल जाते हैं। हड्डियों का क्या होता है? उनके पेट में हाइड्रोक्लोरिक एसिड का ऐसा घनत्व होता है कि हड्डियाँ वहाँ जाकर पिघल जाती हैं, अवशोषित हो जाती हैं। यदि ऐसी अम्लता हमारे पाचन संस्थान में प्रकट हो जाये तो पेप्टिक अल्सर का रूप ले लेती है। हाइड्रोक्लोरिक एसिड में थोड़ी वृद्धि होते ही गैस्ट्रिक समस्या होने लगती है।

अगर तुम्हारा धर्म स्वीकार करता है कि मांसाहार करना चाहिये तो इसमें कोई बुराई नहीं है। यह धर्म-शास्त्र के अनुकूल आचरण है। यौनाचरण में भी दोष नहीं है, क्योंकि यह प्रकृति प्रदत्त आचरण है। सभी प्राणियों के लिये प्रकृति ने यौनाचरण का विधान किया है, मानव इस नियम का अपवाद नहीं है। मगर यह भी है कि अगर तुम इसका त्याग कर सके तो जीवन में इसके अच्छे परिणाम प्राप्त होंगे –

न मांसभक्षणे दोषः न मद्ये न च मैथुने।
एषा प्रवृत्ति भूतानां त्यागः तु महाफलम्॥

त्याग में महाफल है। यही उदार और सहिष्णु दृष्टि जीवन में अपनानी चाहिये। मांसाहार त्याग की बात कोई धर्म नहीं करेगा, हालाँकि हमारा शरीर मांसाहार के अनुकूल नहीं है।

जो लोग मांसाहार से परहेज करने की हिदायत देते हैं वे दूध क्यों पीते हैं? आखिर दूध भी तो गाय के थन से प्राप्त होता है न?

ऐसी बात नहीं है। इसको वैज्ञानिक दृष्टि से देखो। गाय का दूध भेड़ के मांस या गो-मांस से निश्चय ही भिन्न है। दूध के घटक गो-मांस के घटकों से भिन्न होते हैं। तुम गाय का मांस खाओ या गाय का दूध पीयो, तुम दो अलग प्रकार की चीजें ले रहे हो। गाय का दूध माँ के दूध के समान होता है। उसमें कैल्शियम

होता है, प्रोटीन्स और अन्य पोषक तत्त्व होते हैं, जो बच्चों के पोषण के लिये आवश्यक होते हैं। बच्चों को गाय का दूध दोगे तो लाभ होगा और यदि गो-मांस खिला दोगे तो नमो नारायण हो जायेगा।

यह तर्क-वितर्क का प्रश्न नहीं है, यह सामान्य बुद्धि की बात है। यह जीव-हत्या की बात भी नहीं है, आखिर तुम हर पल, हर क्षण जीव-हत्या कर रहे हो। अभी भी तुम्हारे इर्द-गिर्द कितने जीवाणु घूम रहे हैं जिनकी हत्या तुम कर रहे हो। यह सामान्य ज्ञान की बात है और सामान्य ज्ञान यही कहता है कि जरूरत से ज्यादा प्राणियों का नाश कर हम प्राकृतिक सन्तुलन को न बिगाड़ें। तुम मांसाहार करो, पर नियंत्रित और सन्तुलित ढंग से करो। बिना जाँच-पड़ताल के मांस का सेवन मत करो क्योंकि पशुओं के शरीर में बहुत सारे रोगाणु हो सकते हैं।

एक और महत्त्वपूर्ण तथ्य वैज्ञानिकों की दृष्टि में आ रहा है। जब तुम मांस खाते हो तो तुम्हारे शरीर में पशु का डी.एन.ए. स्थानान्तरित होता है। जीन्स का विनाश नहीं होता। दस लाख वर्ष पुराना मच्छर फॉसिल्स में पाया गया है। तुमने जुरैसिक पार्क फिल्म देखी होगी। फॉसिल में मच्छर पाया गया था और उससे डायनोसॉर का डी.एन.ए. निकाला गया। यह तो एक फिल्म है, लेकिन इतना तो सच है कि डी.एन.ए. लम्बे समय तक रहता है। मांस-भक्षण से उस डी.एन.ए. का पशु से मानव शरीर में स्थानान्तरण हो सकता है जिससे शरीर पर विपरीत प्रभाव पड़ सकता है।

भौतिक दृष्टि से आपने इसकी व्याख्या कर दी, परन्तु इस सम्बन्ध में आध्यात्मिक दृष्टिकोण क्या है?

मानव की प्रवृत्ति तीन प्रकार की होती है – सात्त्विक, राजसिक और तामसिक। मुख्य रूप से तामसिक लोग मांसाहार करते हैं। उन्हें मांसाहार और मदिरापान अच्छा लगता है। राजसिक वृत्ति वाले लोग मांसाहार और शाकाहार दोनों करेंगे, लेकिन सात्त्विक कोटि के लोग शुद्ध शाकाहारी होंगे। शाकाहार उत्तम आहार है, क्योंकि उससे पाचन सम्बन्धी उपद्रव नहीं होता।

वैसे आहार एक विवादास्पद विषय है। श्रीकृष्ण शुद्ध शाकाहारी थे। वे दूध, मक्खन, पनीर और रोटी खाते थे। आजीवन यही उनका आहार था। श्रीराम मांसाहारी थे, सीताजी मांसाहारी थीं। इसलिये आहार के आधार पर आध्यात्मिक विकास-क्रम का निर्धारण नहीं किया जा सकता है।

आध्यात्मिक विकास मानवीय विकास से भिन्न है। तुम ग्रीक हो सकते हो, तुम हिन्दू हो सकते हो, तुम चीनी हो सकते हो, तुम जूता बनाने वाला चर्मकार हो सकते हो, तुम लौहार हो सकते हो या स्वर्णकार हो सकते हो। आध्यात्मिक विकास मनुष्य के विभिन्न आयामों के विकास पर निर्भर करता है। इसी मानव शरीर में आत्मा का निवास है, लेकिन आत्मा शरीर से भिन्न है। शरीर आत्मा को प्रभावित नहीं करता। शाकाहारी व्यक्ति तस्कर, हत्यारा या चोर हो सकता है जबकि मांसाहारी व्यक्ति बहुत उदार, दयावान् और करुणावान् हो सकता है। इसलिये आध्यात्मिक जीवन का मूल्यांकन अन्य मानदण्डों पर करना चाहिये।

आत्मा अमर है, अजन्मा है। वह निर्मुक्त है, सदा द्युतिमान है। वहाँ प्रकाश ही प्रकाश है, अन्धकार का नामोनिशान नहीं। वहाँ ज्ञान की ज्योति प्रज्ज्वलित है। यही सामान्य धारणा है आत्मा के बारे में। आत्मा अविनाशी है, शरीर नाशवान है। आत्मा कभी रोगग्रस्त नहीं होती। वह सदा देदीप्यमान रहती है, जबकि रोग, बीमारी और मृत्यु शरीर का धर्म है। इस प्रकार शरीर और आत्मा की प्रकृति भिन्न है। इसलिये वेदान्त में कहा जाता है, 'मैं शरीर नहीं हूँ, मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ।' यहाँ मैं से मतलब है आत्मा, इस शरीर के भीतर वास करने वाला आत्मतत्त्व जिसको हम नहीं जानते हैं।

हमे बताया गया है कि शरीर के भीतर आत्मा का निवास है, लेकिन किसी ने इसका अनुभव नहीं किया है। वह अनुभव तभी प्राप्त होता है जब ईश्वर-कृपा होती है। सिर्फ भगवत् कृपा से आत्मानुभूति होती है, दूसरे किसी उपाय से नहीं। जब प्रभु की इच्छा होगी तभी उस आत्मा की झलक तुम्हें प्राप्त होगी। लेकिन फिर भी लोग साधना करते हैं, जप करते हैं, ब्रह्मचर्य धारण करते हैं, तपस्या करते हैं, त्याग और संयम करते हैं, तीर्थाटन करते हैं, सात्त्विक जीवन अपनाते हैं, आखिर क्यों? इन कर्मों से हमें मानसिक बल प्राप्त होता है। अगर तुम कुछ नहीं करोगे, कोई जप-तप नहीं करोगे, ब्रह्मचर्य का पालन नहीं करोगे, आध्यात्मिक जीवन नहीं जीयोगे तो तुम्हें बुरा लगेगा। तुम्हें लगेगा, 'मैं कुछ नहीं कर रहा हूँ, मैं लाचार और पंगु हूँ।' तुम अवसादग्रस्त हो जाओगे। अपने व्यक्तित्व को आश्वस्त और सन्तुष्ट रखने के लिये हम साधना करते हैं, लेकिन एक बात हमेशा याद रखो कि आत्मप्रकाश तुम्हें तभी प्राप्त होगा जब भगवत् कृपा तुम पर होगी। उसकी इच्छा के बिना तुम्हें कुछ भी मिलने वाला नहीं।

स्त्री-पुरुष सम्बन्ध

ऐसा माना जाता है कि जब लड़की की शादी हो जाती है तो वह अपना अस्तित्व पति में खो देती है। यह गलत मान्यता है। तुम तुम हो, तुम्हारा पति तुम्हारा पति है। तुम दोनों के बीच एक सामाजिक सम्बन्ध है, एक साथ रहने के लिये। तुम और तुम्हारे पति समाज में एक साथ रह सकें, इसी के लिये नियम बनाया गया है। पर इसका मतलब यह नहीं होता कि तुम्हारा निजी अस्तित्व ही नहीं रहा। लड़की गिडवानी परिवार में पैदा हुई, शादी के पहले तक गिडवानी परिवार में रही और शादी के बाद हीरानन्दानी परिवार में गयी तो गिडवानी मर गया, हीरानन्दानी बन गई। यह कौन-सा तरीका है? वह जो पहले थी आज भी है।

स्त्री का अपना अस्तित्व है और पुरुष का भी अपना अस्तित्व है। उसके दो हाथ-पैर हैं और तुम्हारे भी। उसकी भी एक खोपड़ी है, तुम्हारी भी। वह भी सुयोग्य है, तुम भी सुयोग्य हो, दोनों में समान योग्यता है, फिर दोनों के लिये कानून अलग क्यों? पैतृक सम्पत्ति पाने का कानून अलग है। पैतृक सम्पत्ति का अधिकार लड़के का होता है, लड़की का नहीं। इसलिये जब लड़की जाती है तो अपने साथ दहेज ले जाती है। यह एक और खराब प्रथा है। जिस लड़की की अपनी सम्पत्ति है, बैंक में अपने पैसे हैं, वह शादी करेगी तो दहेज तो लेगी नहीं। वह अपने पैसे लेकर जा रही है। वह उसकी अपनी सम्पत्ति है, दहेज नहीं है।

अगर आज हमारी लड़की के पास पाँच बीघा जमीन हो, पाँच लाख बैंक बैलेन्स हो और वह किसी लड़के से शादी करे तो वह अपनी सम्पत्ति साथ ले जायेगी। वह उसी की है, हमको देने की क्या जरूरत है? बाप बेटी की शादी के लिये अपनी जेब से पैसे क्यों निकालेगा? बेटी कमाये और शादी करे, और जो लड़की कमा नहीं सकती वह घर-गृहस्थी कैसे चला सकती है? वह तो वहाँ नौकरानी की तरह रहेगी। घर में औरतें करती क्या हैं? खाना बनाती हैं, कपड़े धोती हैं, बर्तन माँजती है, झाड़ू लगाती हैं। और क्या करती हैं? यह काम तो 600 रुपये में हिन्दुस्तान की नौकरानी कर लेती है। घर में हम 600 रुपये में नौकरानी रखें तो यह सब काम कर लेगी। अब 600 रुपये की नौकरानी के लिये हम किसी से शादी क्यों करें?

शादी इसलिए की जाती है कि स्त्री-पुरुष के बीच एक स्नेह होता है, एक भाव होता है, मित्रता की भावना होती है। पति-पत्नी एक-दूसरे के दोस्त होते

हैं, और मित्र की तरह ही उन्हें रहना चाहिये। मित्रों में कोई बड़ा या छोटा नहीं होता, बराबरी की भावना रहती है। पति और पत्नी के बीच बड़ा और छोटा हमारे समाज के कारण होता है। पति बड़ा माना जाता है और पत्नी छोटी समझी जाती है। सामाजिक और कानूनी, दोनों दृष्टियों से ऐसा नहीं होना चाहिये। तब मित्रता कहाँ रही? जब तुम बड़े और हम छोटे या हम बड़े और तुम छोटे, तब हम दोस्त कैसे हो सकते हैं? दोस्ती तो बराबरी में होती है।

पत्नी ही पति की बात क्यों सुने? दोनों को अपने-अपने विचार रखने का हक है। पति-पत्नी के सम्बन्ध को मित्रता का सम्बन्ध मानना चाहिये। जब तक दो व्यक्तियों के बीच परिपक्वता नहीं आती तब तक शादी का कोई मतलब नहीं। शादी केवल बच्चे पैदा करने के लिये नहीं की जाती है। आजकल विज्ञान के सहारे बच्चा बिना शादी के भी हो जाता है, 'सरोगेट बेबी' जिसको कहते हैं।

शादी की जाती है दो प्राणियों के जीवनभर एक साथ रहने और अच्छी तरह से जीवन निर्वाह करने के लिये, नहीं तो अकेलापन महसूस होता है। दोनों को अकेलापन महसूस होता है, यह मनुष्य की कमजोरी है। यदि तुम्हारे साथ कोई नहीं है तो तुम अकेलापन महसूस करते हो। इस एकाकीपन को दूर करने के लिये स्त्री और पुरुष एक-दूसरे के पूरक होकर आपस में मिलते हैं। हम तो वेदों की बात बोल रहे हैं। यह वेदों में लिखा है, इसलिये आप लोग परिवार बसाओ, सद्विचारों को जगाओ और अपने जीवन को एक नयी दिशा दो। किसी को तो आगे आना होगा, पहल करनी पड़ेगी। आखिर समाज किसको कहते हैं? समाज की परिभाषा क्या है? समाज किसी आदमी का नाम है क्या? समाज नाम की तो कोई वस्तु है ही नहीं। चार आदमी एक जगह बैठ गये तो समाज हो गया। इसका मतलब है समाज को बनाने के लिये पहले अपनी खोपड़ी को बनाना होगा, अपने विचारों का मंथन करना होगा।

हम अपने देश की बात करते हैं। जरूर हमने कहीं गलती की है। अगर हम गलत नहीं होते तो हमारा देश आज इतना अशिक्षित नहीं होता। सत्तर प्रतिशत लोग यहाँ अशिक्षित हैं। अगर हम आज सही रास्ते पर होते तो हमारे देश में भयंकर गरीबी क्यों होती? भौतिक अधिकारों को छोड़ो, हमारे देश में लोगों को कोई अधिकार नहीं है। यहाँ खाने को नहीं मिलता। हम तो गाँव-गाँव घूम आये हैं, हमने देखा है घरों में खाने को कुछ नहीं है, इतनी गरीबी है! जिस देश के निवासियों को स्वच्छ जल न मिले, कम-से-कम एक जून खाना न मिले, रहने के लिये छत न मिले, जहाँ स्त्रियों को साफ-सफाई का

ज्ञान न हो, वह सभ्यता कैसी, और वह समाज कैसा? उसको तुम ऊँचा कहते हो? तुम्हारे पूर्वजों ने रामायण और भागवत जैसे ग्रंथ लिख दिये, इसलिये तुम बड़े हो गये? तुम्हारे पूर्वज बड़े थे, ऋषि-मुनि थे, तुम्हारे देश में दूध की नदियाँ बहती थीं, तुम्हारा देश सोने की चिड़िया कहलाता था, यह मानने के लिये हम तैयार हैं, मगर आज ऐसा नहीं है।

यहाँ हिन्दुस्तान में आम औरत गँवार है, पढ़ी-लिखी नहीं है। मर्दों की भी यही स्थिति है। उन्हें बीस-तीस रुपये मजदूरी मिलती है। इतने में किसी का पेट भरता है क्या? गरीबी समाज पर सबसे बड़ा कलंक है। फिर भी तुम कहते हो कि हम ठीक हैं। सारे शरीर में फोड़े हैं और तुम बोलते हो हम बिलकुल ठीक हैं। शरीर का तापमान 102-103 डिग्री है और तुम पूछते हो 'कैसी हो बेटी?' तो बेटी बोलती है, 'मैं ठीक हूँ पापा।' तुम यह कैसे बोल सकती हो? तुम बीमार हो, तुम्हारा समाज बीमार है। स्त्रियों के साथ अन्याय होता है, अत्याचार होता है उन पर। तुम्हारी सारी सामाजिक व्यवस्था अन्याय पर टिकी है। उसको बदलने के लिये पढ़े-लिखे लोगों को आगे आना होगा और साफ-साफ बात बोलनी होगी।

जो भी देश आज उन्नति के शिखर पर पहुँचे हैं वे आज दुनिया में राज कर रहे हैं, उन्होंने ही डब्ल्यू. टी. ओ. या इन्टलेक्चुअल प्रॉपर्टी राईट्स जैसे

व्यापार आदि पर कानून बनाये हैं जो सबको मानने पड़ रहे हैं। यह कौन कर रहा है, तुम लोग कर रहे हो? जिनके पास पैसे हैं, जो धनवान हैं वे लोग करा रहे हैं। तुमको उनकी बात माननी पड़ेगी। तुमको हस्ताक्षर करना पड़ेगा. क्योंकि शक्ति है उनके पास। याद रखो शक्ति उनके पास होती है जिनके समाज में स्त्री और पुरुष समान रूप से शक्तिशाली हैं। तुम्हारा एक पैर टूटा है। हिन्दुस्तान का बायाँ पैर टूटा है, यह लंगड़ा राष्ट्र है।

इसलिये सबसे पहले तुम लोगों को मालूम होना चाहिये कि गृहस्थ जीवन किसको कहते हैं। गृहस्थ जीवन बाजा बजाना और लड़की को लेकर नाचना नहीं है। लड़की जब दूसरे घर में जाती है तो अपना अस्तित्व लेकर जाती है। वह अपना अस्तित्व बनाकर रखती है वहाँ, यह मेरा घर है। लड़की के अधिकार, चाहे वे पैतृक सम्पत्ति से सम्बन्धित हों या अन्य क्षेत्रों से, वे निश्चित होना चाहिये। उसकी बात मानी जानी चाहिये। औरतों की गलतियों के लिये भी वही कानून होना चाहिये जो पुरुषों के लिये है। मर्द गलती करें तो सब माफ, स्त्री गलती करे तो? औरत विधवा हो तो सफेद कपड़े पहनती है, और मर्द विधुर होता है तो? ये दो कानून बन गये न? जिस समाज में दो व्यक्तियों के लिये दो कानून हों वह समाज खोखला है।

यह हुई समाज की बात, अब रही आध्यात्मिकता की बात। मैं विदेश में किसी भी हिन्दुस्तानी के यहाँ नहीं ठहरता था। एक-दो बार ठहरा, फिर कान पकड़ लिया। मैं ईसाइयों के बीच ही ठहरता था। क्यों? इसलिए कि उनके यहाँ स्त्री और पुरुष बराबर होते हैं और अध्यात्म में उनकी मान्यता है। वे मेरे पास इसलिये नहीं आते थे कि उनको बेटा, बेटी या नौकरी चाहिये। वे नहीं कहते, 'मैं गरीब हूँ, मुझे साड़ी चाहिये, मुझे धोती चाहिये।' बिलकुल नहीं। आत्मा क्या है, परमात्मा क्या है, पुनर्जन्म क्या है, शास्त्र क्या है, वेद क्या है, वे लोग यही सब प्रश्न पूछते थे। इसलिए हमेशा मैं ईसाइयों के बीच रहता था। एकाध बार सिन्धियों के पास ठहरा था, फिर कान पकड़ लिया। जो हिन्दुस्तानी विदेश जाता है महाभौतिकवादी बन जाता है। उसका दिमाग टी. वी., ट्रान्जिस्टर, रेडियो, सी. डी., कार, बढ़िया कपड़े, बढ़िया घड़ी वगैरह में ही उलझा रहता है। इतना खर्च करते हैं वे अपने ऊपर, बेशुमार खर्चा। वे हमेशा अपने घर में ठहरने को कहते, पर हम जवाब दे देते कि हम किसी के घर में नहीं ठहरते हैं, हम तो साधु हैं। पूछते थे, 'स्वामीजी, आपको होटल में कैसे अच्छा लगेगा? यह आपका ही तो घर है।' मैं कह देता था, 'नहीं-नहीं!'

स्त्री को आदिकाल से ही अबला क्यों कहा गया है?

स्त्री को अबला कभी नहीं कहा गया है। देवी भागवत पढ़ो, वेदों को पढ़ो। लोग क्या कहते हैं उस पर ध्यान न दो। तुमने शास्त्र पढ़ा है क्या, वेद पढ़ा है क्या? ऋग्वेद पढ़ो, सामवेद पढ़ो, अथर्ववेद पढ़ो, उपनिषद् पढ़ो। हमारे यहाँ तो शादी की प्रथा थी नहीं, स्वयंवर की प्रथा थी। स्वयंवर यानि खुद चुनो। हमारे यहाँ स्त्री को इतने अधिकार प्राप्त थे कि वह खुद चुन कर शादी करे, अथवा किसी से प्रेम हो जाये, उससे बच्चा पैदा हो जाये तो उसके लिये भी निश्चित नियम थे। विश्वामित्र मुनि का मेनका के साथ सम्बन्ध हुआ तो एक बेटी पैदा हुई। उसका नाम था शकुन्तला और वह कण्व के यहाँ पली। कण्व भी ऋषि थे।

राजा दुष्यन्त इक्ष्वाकु वंश का शक्तिशाली राजा था। उसके साथ शकुन्तला का सम्बन्ध हो गया शादी के पहले ही। शादी के पहले वह गर्भवती हो गयी, उसको भरत नाम का एक पुत्र हुआ। उसी भरत के नाम से इस देश का नाम भारत हुआ। किसी ने नहीं कहा कि 'अरे! यह तो अवैध औलाद है।' किसी ने नहीं कहा कि एक साधु की अवैध बेटी विवाहपूर्व गर्भवती हो गई और उसका बेटा जायज पुत्र नहीं है। भारत के लोग इतने उदार थे कि इस देश का नाम ही उस अवैध सन्तान के नाम पर भारत रख दिया। यह तुम्हारी संस्कृति का परिचय देता है कि तुम्हारे देश के लोग कैसे थे और क्या करते थे?

देवी भागवत में तो स्पष्ट लिखा है कि सृष्टि को बनाने वाली जो शक्ति है वह आद्या शक्ति है, वही जगज्जननी है। उसी शक्ति से ब्रह्मा, विष्णु और शिव पैदा हुये। जब राजा दशरथ लड़ाई के लिये गये तो कैकई भी साथ में गयी। उनके साथ उनकी प्रेमिका बनकर तो गयी नहीं थी। उनकी सारथिन बन कर गयी थी। उनके रथ का संचालन कर रही थी। ऐसी बहुत-सी कहानियाँ हैं, उनको पढ़ो। गार्गी, मैत्रेयी, मदालसा की कहानियाँ पढ़ो। यह तो बीच में ऐसा हो गया कि हमारे देश में राजा-महाराजा भोग-विलास में निरत हो गये और दूसरी जातियाँ आने लग गयीं। फिर औरतों पर अत्याचार होने लगा, शिक्षा कम हो गयी और उनके गिरावट का दौर शुरू हो गया।

जैसी सरकार होगी वैसा ही समाज बनता है। पहले मुगल सरकार थी तो परदा आ गया, क्योंकि मुगलों के यहाँ परदा रखा जाता था। आज हम आधुनिक हो गये हैं तो लड़कियों के सिर से परदा हट गया। इतना ही फर्क पड़ता है। समाज को बनाने में राजा का असर पड़ता है। जैसी सभ्यता आयेगी वैसा ही समाज बनेगा। आज हम लोग जिस युग में रह रहे हैं उस

युग में यह कहा जाता है कि जब तक स्त्रियाँ विदुषी नहीं होंगी, विद्वत्ता प्राप्त नहीं करेंगी, तब तक समाज की उन्नति नहीं हो सकती है। कारण यह कि स्त्रियाँ हमारे समाज का पचास प्रतिशत हिस्सा हैं। स्त्री-पुरुष में समान शक्ति होगी तब हमारे समाज में धन-धान्य की वृद्धि होगी, सभी चीजों की उन्नति होगी। नहीं तो कुछ नहीं होगा। सरकार कितने भी प्रोग्राम बनाये, कभी भी गरीबी दूर नहीं होगी।

गरीबी दूर करने के लिये स्त्री पर अन्याय और अत्याचार बन्द करना होगा। साथ ही लड़कियों को जमकर पढ़ाना होगा अठारह-बीस साल तक। अठारह साल तक पढ़ाओ, जिसको जो बोलना है बोले। कौन परवाह करता है? पढ़ाकर उससे बैंक में काम कराओ, कॉलेज में व्याख्याता बनवाओ। इस बीच यदि किसी से उसका मन लग जाये तो शादी कर दो। जात-पात देखने की जरूरत ही क्या है? यह जाति-प्रथा राजनैतिक लोगों ने बनायी है। तुम तो देख रहे हो आँखों के सामने। जाति तो यही लोग बनाते हैं वोट खींचने के लिये। वरना जात-पात नाम की कोई चीज होती नहीं है। सभी मनुष्य एक ही जाति के हैं। दो पैर, दो हाथ, दाढ़ी-मूँछें, खाना-पीना, टट्टी-पेशाब, बाल-बच्चे, सब तो एक ही जैसे हैं। कोई फर्क देखते हो क्या?

इसलिये जरूरी है कि आप लोग लड़के-लड़कियों को खूब पढ़ायें, फिर उसके बाद बोलना, 'बेटा! शादी करके अपना घर बसाओ और हम जा रहे हैं रिखिया। रिखिया जाकर वहाँ मकान बनायेंगे, वानप्रस्थ जीवन यापन करेंगे, कुछ भजन-कीर्तन करेंगे, सेवा करेंगे। बाकी काम तुम करो। यह हमारी ड्यूटी नहीं है।' मनुष्य को अपनी सम्पत्ति का वितरण-विभाजन करना चाहिये। तीर्थाटन करते हो तो वहाँ पैसे खर्च करते हो। इससे दुकानदारों का, पण्डे-पुजारियों का पेट भरता है। फिर सम्पत्ति का एक दूसरा हिस्सा है जो अनाथों के लिये होता है, क्योंकि हर समाज में कमजोर लोग होते हैं, बीमार लोग रहते हैं, इनकी मदद भी तो किसी को करनी होगी। अमेरिका-इंग्लैण्ड में लोग मल्टीपल-स्क्लेरोसिस से अपंग नहीं हैं क्या? वहाँ लोग अन्धे नहीं होते क्या? ऐसे लोग सब जगह हैं। संस्थाएँ उनकी मदद करती हैं। मनुष्य को अपनी सम्पत्ति का एक हिस्सा कमजोर लोगों के लिये, एक हिस्सा साधुओं के लिये, एक हिस्सा गरीबों की सेवा के लिये और एक हिस्सा परिवार के लिये विभाजित करना चाहिये। यही सम्पत्ति के विभाजन और वितरण का तरीका है।

– 17 मार्च 1998, रिखियापीठ

भारतीय संस्कृति के समुच्चय योग दर्शन के आधार

डॉ. शिवशंकर पटेल, जबलपुर

मुंगेर की धरती अति पावन है जहाँ का कंकड़-कंकड़ शंकर है, जहाँ पग-पग पर पूज्य गुरुदेव, परमहंस सत्यानंद जी महाराज की दिव्य लीलाएँ मचलती, महकती और उन्मादित होती हैं। वहीं गंगा का पावन तट है, वहीं कर्ण की तपोस्थली से एक संदेश गूँजा योगविद्या का, जिसे विश्व ने आत्मसात् किया। आज संयुक्त राष्ट्र संघ और विश्व के समस्त राष्ट्रों ने योगविद्या को अपना लिया है। योगविद्या, जो कभी साधु-संन्यासी-योगियों की विद्या हुआ करती थी, आज जन-जन में प्रचारित है। विश्व स्तर पर योग की स्वर लहरियाँ आज जन चेतना का केन्द्र बनी हुई हैं। स्वस्थ रहना है तो योग करो, लम्बी उम्र पाना है तो योग की शरण में आओ।

शायद 1968 की बात है, मैंने जवानी की दहलीज पर पैर रखा ही था, मूँछ की रेखाएँ भी नहीं आई थीं जब संस्कारधानी जबलपुर से प्रकाशित होने

वाले समाचार-पत्र 'नव भारत' में समाचार प्रकाशित हुआ कि 'महाकौशल शहीद स्मारक ट्रस्ट', गोलबाजार, जबलपुर में योग शिविर का आयोजन किया गया था जिसका संचालन श्री स्वामी सत्यानंद जी महाराज करने जा रहे थे। समाचार पढ़कर मैं भी योग प्रशिक्षण शिविर में गया। साहस की कमी होने के कारण मैं लोगों को योगासन करते हुए दूर से देख रहा था। पूज्य स्वामीजी ने मुझे देखा और बुला लिया। योग प्रशिक्षण शिविर सात दिन चला और तब से आज तक मैं योगविद्या का विद्यार्थी बना हुआ हूँ।

मुझे सौभाग्य मिला, मैंने योगविद्या का प्रशिक्षण नवयुवकों, वृद्धों, मध्यप्रदेश उच्च न्यायालय और दिल्ली के उच्चतम न्यायालय के माननीय न्यायाधीशों को योग प्रशिक्षण दिया। आज भी योग मेरे जीवन का आधार है और इसका श्रेय पूज्य गुरुदेव को जाता है।

पूज्य गुरुदेव के चेहरे पर दिव्य स्वर्णिम आभा, सूर्य-सा तेज और मनमोहक मुस्कान बनी रहती थी। उनकी भाव-भंगिमाओं में अद्भुत् आध्यात्मिक ऊर्जा और साथ ही निस्सीम शांति थी। जन-जन के लिए अनुराग के सागर थे गुरुवर। अनेकों बार संस्कारधानी जबलपुर में गुरुवर का शुभागमन हुआ, मैंने उनकी पावन उपस्थिति का लाभ हमेशा लिया।

योगविद्या पर जितना सूक्ष्म, सरलीकृत विवेचन गुरुदेव ने किया, ध्यान, योगनिद्रा, भजन-कीर्त्तन और चरित्र पर बल देकर जो लेखन किया, वह हमलोगों के लिए प्रेरणा का विषय है जो आज से अनंतकाल तक रहेगा। महान् योगी, महान् लेखक, महान् प्रचारक, महान् तत्त्वदर्शी चिंतक, महान् धर्म-ध्वजा वाहक, चलते-फिरते तीर्थ थे गुरुवर मेरे। क्या लिखा जाय, क्या न लिखा जाय? लेखनी अवरुद्ध हो जाती है।

मैं तो छोटा बालक था, सो रहा था,
उन्होंने मुझे जगा दिया
और दिव्यता की ओर बढ़ा दिया।
हम शीश झुकाते हैं,
गुरुवर तुम्हारे चरणों में।
सब तीरथ का फल पाते हैं,
गुरुदेव तुम्हारे चरणों में॥

भाग्य और भगवत्कृपा

जीवन पूर्वनिर्धारित है। जीवन ही क्यों, जन्म, मृत्यु और पुनर्जन्म, ये सभी पूर्वनिर्धारित हैं। हम जो भी पुरुषार्थ करते हैं वह अपने सन्तोष और सान्त्वना के लिए ही करते हैं। अगर पुरुषार्थ नहीं करोगे तो समय कैसे कटेगा? मन को किसी काम में लगाये रखना जरूरी है, यह हुई पहली बात। दूसरी बात, अगर तुम यह सोच भी लो कि जीवन का क्रम पूर्वनिर्धारित है तो भी तुम्हारी यह सोच केवल बौद्धिक है, अनुभव पर आधारित नहीं है। अनुभव और ज्ञान, ये दो अलग-अलग चीजें हैं। ज्ञान मानसिक उपलब्धि है। किताबों में लिखा है, संत-महात्मा कहते हैं कि जीवन पहले से निर्धारित है, और हम इस पर विश्वास कर लेते हैं, लेकिन यह विश्वास एक ज्ञान का, एक जानकारी का परिणाम है, अनुभव का परिणाम नहीं। अगर तुम थोड़ा समय निकाल कर अपने अतीत का व्यवस्थित ढंग से ख्याल कर सको तो कहीं पर तुम्हें मालूम पड़ेगा कि तुम्हारी आज की स्थिति तुम्हारे प्रयासों का परिणाम नहीं, बल्कि एक पूर्वनिर्धारित उपलब्धि है। ऐसा अनुभव जीवन में कभी-कभी अचानक आ जाता है, बिजली की चमक की तरह जब तुम्हें पता चल जाता है कि तुम जो कुछ हो या जो कुछ तुम्हारे साथ घटित हुआ है वह तुम्हारे पुरुषार्थ के कारण नहीं था। तब यह स्पष्ट हो जाता है कि हाँ, वह पूर्वनिर्धारित था।

मनुष्य की समस्या अपने मन को कहीं लगाये रखना है। वह हमेशा असुरक्षित महसूस करता है, इसलिए कुछ-न-कुछ करता है। भले ही वह जानता है कि जो हो रहा है वह ईश्वरेच्छा से है या कर्मों का फल है, फिर भी वह असुरक्षित और भयभीत रहता है। देखा जाए तो मनुष्य का यह अहंकार, उसकी असुरक्षा की भावना भी पूर्वनिर्धारित है, और इसीलिए वह पुरुषार्थ करता है। इस तरह पुरुषार्थ भी पूर्वनिर्धारित है।

तब तो समझदारी इसी में है कि सब कुछ साक्षी भाव से देखते जाओ।

ऐसा हो नहीं सकता क्योंकि कोई बिना कुछ किये रह नहीं सकता, यह भी पहले से निर्धारित है। और जो पूर्वनिर्धारित है उसे तो होना ही है। एक बच्चा भी यह जानता है कि उसकी माँ उसके लिए भोजन तैयार कर रही है, फिर भी वह रोता-मचलता है। हर दिन वह रोता है और हर दिन माँ उसे खिलाती

है। यह स्वभाव सभी प्राणियों में पूर्वनिर्धारित है। केवल मनुष्य में ही नहीं, कुत्ते-बिल्ली, गाय-भैंस, यहाँ तक कि कीट-पतंगों को देखो, वे कैसे चलते हैं, उनकी सभी गतिविधियाँ पूर्वनिर्धारित हैं। आखिर यह पूर्वनिर्धारण है क्या? क्या यह दार्शनिक शब्द है या धार्मिक? विज्ञान की भाषा में इसे मूल प्रवृत्ति या इंस्टिंक्ट कहा जाता है जो प्रकृति का आधारभूत नियम है। गाय, घोड़े या कुत्ते में सोचने की क्षमता नहीं होती, फिर भी वे कितने आश्चर्यजनक चीजें कर बैठते हैं। ऐसा कैसे होता है? इसलिए कि मूल प्रवृत्ति सभी जीवों में है।

ज्ञान के तीन स्तर होते हैं – मूल प्रवृत्ति या सहज ज्ञान, बौद्धिक ज्ञान और अन्तर्ज्ञान। अंग्रेजी में इन्हें इंस्टिंक्ट, इंटेलेक्ट और इंट्यूशन कहते हैं। संत-महात्मा अन्तर्ज्ञान के स्तर पर काम करते हैं। सामान्य लोग बौद्धिक स्तर पर कार्य करते हैं, लेकिन मूल प्रवृत्ति भी बहुत प्रबल होती है। आहार, भय, निद्रा और मैथुन – ये मूल प्रवृत्ति के चार मुख्य पहलू हैं। मूल प्रवृत्ति का मतलब है जीव का मौलिक स्वभाव, इसलिए पुरुषार्थ करना भी एक मूल प्रवृत्ति है। पुरुषार्थ चलते रहता है, संत, महात्मा, पैगम्बर, अवतार, सभी पुरुषार्थ करते हैं। जब वे भौतिक शरीर धारण करते हैं तो वे प्रकृति के, मूल प्रवृत्ति के दायरे में आ जाते हैं।

सांख्य दर्शन में दो शाश्वत सिद्धान्तों की चर्चा आती है, एक को पुरुष और दूसरे को प्रकृति कहा जाता है। जब पुरुष और प्रकृति संयुक्त होते हैं तो प्रकृति के सभी गुण पुरुष में हस्तान्तरित हो जाते हैं। नहीं तो पुरुष में कोई गुण नहीं

होते, वह निर्गुण है। प्रकृति में ही ये सब गुण होते हैं। प्रकृति का उद्भव होता है, विकास होता है और उसमें परिवर्तन होता है। वह सात्त्विक से राजसिक और राजसिक से तामसिक बनती है। प्रकृति सदैव सक्रिय रहती है। वह दूषित होती है, फिर शुद्ध होती है। कर्म प्रकृति का अंग है, उसी प्रकार त्याग, प्रेम, घृणा, ये सभी प्राकृतिक हैं। पुरुष अपरिवर्तनशील है, लेकिन वही पुरुष जब प्रकृति से संबद्ध होता है तो प्रकृति के सभी गुण, सभी कर्म, सभी धर्म पुरुष में समाहित हो जाते हैं और यही कारण है कि जो भी संत, पैगम्बर या अवतार धरती पर अवतरित होते हैं वे हमारे-तुम्हारे जैसा आचरण करते हैं। अब वे प्रकृति के दायरे में आ चुके होते हैं और प्रकृति के सभी गुण उनमें प्रतिबिम्बित होते हैं। ईसा मसीह लोगों के दुःख देखकर दुःखी हो जाते थे। उन्हें दुःखी होने की क्या जरूरत थी? कोई दुःखी है तो है, कोई मरता है तो मरे, तुम्हें क्या? लेकिन एक बार तुम प्रकृति के क्षेत्र में आ गये हो तो भावनाओं से प्रभावित हुये बिना नहीं रह सकते।

इसलिए तो कहता हूँ कि सब कुछ पूर्वनियोजित है। लेकिन यह जानते हुए भी मनुष्य पुरुषार्थ कर सकता है। मैं अपने बारे में जानता हूँ, सब कुछ पूर्वनिर्धारित है। इसे मैंने काफी पहले जान लिया था, फिर भी सक्रिय रहा और अभी भी सक्रिया हूँ। मैं जानता हूँ कि साधना या अनुष्ठान करने से या शुद्ध जीवन जीने से कुछ नहीं होना है, पर यह जानते हुए भी वैसा कर रहा हूँ। आध्यात्मिक जीवन के लिए, दिव्यता का अनुभव पाने के लिए केवल भगवान की कृपा काम आती है, और कुछ नहीं। यह सब साधना मुझे करनी है, क्योंकि यह पुरुषार्थ का अंग है और यह पुरुषार्थ पूर्वनियोजित है। ये सब चीजें समाज के सन्दर्भ में हैं। साधु-संतों का समाज के प्रति दायित्व होता है। जब समाज में छल-कपट, झूठ-फरेब, भय-आतंक का बोलबाला हो तब संत-महात्मा सामाजिक व्यवहार को अध्यात्म से जोड़ते हैं, अन्यथा यह आवश्यक नहीं। एक दुराचारी को भी ईश्वर का दर्शन हो सकता है और एक सदाचारी को नहीं। सभी जगह यह कहा गया है कि भगवान तुम्हारे नैतिक या सामाजिक आचरण को नहीं देखते, बल्कि तुम्हारे हृदय और भावनाओं को देखते हैं। सदाचार और सद्व्यवहार की आवश्यकता समाज को है, नहीं तो सभी लोग उद्दण्ड और आंतकवादी प्रवृत्ति के हो जायेंगे।

हमलोग अभी एक सीमित दायरे में बात कर रहे हैं। वास्तव में हमें केवल इस पृथ्वी या सौरमंडल की ही नहीं, बल्कि सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड और सृष्टि के

संदर्भ में चर्चा करनी चाहिए। सारी सृष्टि ही पूर्वनियोजित है। सतयुग, त्रेतायुग, द्वापरयुग और कलियुग – सभी युग पूर्वनिर्धारित हैं। हम तो अभी स्वामी आत्मानन्द या स्वामी सत्यानन्द या फलाने आदमी की ही बात कर रहे हैं, पर जरा सोचिये, जब रोम में आग लगी हो तो मेरा घर स्वाहा होने से बचेगा क्या? जब समस्त ब्रह्माण्ड की नियति निर्धारित है तो हमलोग उसके अपवाद कैसे हो सकते हैं? देखा जाए तो हमलोगों की हैसियत, हमारा अस्तित्व ही क्या है? हमारे अस्तित्व का आधार यही विचार है कि हम हैं। इस व्यापक ब्रह्माण्ड की जरा कल्पना करो जिसमें हमारे जैसे सैकड़ों सौर मंडल हैं। फिर अपने सौर मंडल को देखो जिसमें पृथ्वी एक छोटा-सा ग्रह है, उस पृथ्वी में भारत या ग्रीस जैसा एक देश है जिसमें देवघर या एथेंस जैसा एक नगर है। उसमें रिखिया एक छोटा गाँव है और उसमें एक छोटे-से घर में एक छोटा-सा इंसान है। अब बताओ ऐसे लघु मानव का इस ब्रह्माण्ड में क्या स्थान है? तुम तो एक अणु जितने भी नहीं हो!

इस तरह सोचोगे तो ईश्वर का विराट् स्वरूप समझ में आयेगा, जिसे भगवान श्रीकृष्ण ने गीता के ग्यारहवें अध्याय में अर्जुन को दिखाया था। मैं उस विराट् ब्रह्माण्ड की बातें कर रहा हूँ जिसका न तो आदि है और न ही अन्त। हमें तो पता ही नहीं कि इसमें पृथ्वी जैसे कितने ग्रह हैं, कितने तरह के जीव हैं इसमें! इस अनादि, अनन्त ब्रह्माण्ड का रहस्य अद्भुत है, फिर हम कैसे बता सकते हैं कि हमारा अस्तित्व कहाँ है, और फिर यह पूर्वनियोजन की बात भी कितनी मजेदार लगती है?

मैं मोक्ष की बात नहीं जानता। मैंने ग्रन्थों में पढ़ा है, इस पर विचार भी किया है, लेकिन जहाँ तक मेरा सवाल है मुझे यह नहीं चाहिए। मैं तो चाहता हूँ कि मैं बार-बार जन्म लूँ। आखिर बंधन और मुक्ति में अन्तर है ही क्या? यह तो मात्र मन की एक अवधारणा है। मंदिर में बैठा व्यक्ति उतना ही खुश है जितना मदिरालय में बैठा आदमी। ये छोटी-छोटी बातें सत्तर-अस्सी साल की जिन्दगी में ज्यादा मायने नहीं रखतीं। असली बात है ईश्वर का अनुभव जो अचानक होता है। जैसे तुम हमें देख रहे हो, वैसे ही तुम राम, कृष्ण या शिव का दर्शन कर सकते हो। लेकिन यह पूर्वनिर्धारित नहीं है, यह तभी संभव है जब उसकी इच्छा होगी। ईश्वर पूर्वनिर्धारण का विषय नहीं है। हाँ, सबके पास यह संभावना है, ईश्वर-कृपा सबके लिए संभव है।

– 20 मार्च 1998, रिखियापीठ

परिव्राजक सत्यानन्द

राजेश शुक्ल, पटना

वर्षों से मैं श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के जीवन और उन प्रसंगों पर कुछ लिखना चाह रहा था, जिसने मेरे अंतर्मन को बहुत गहराई से स्पर्श और आलोकित किया और उनके प्रति मेरी श्रद्धा निरंतर बढ़ती गयी। कभी उनकी जन्मस्थली भिखियासेन की खोज में अल्मोड़ा गया तो कभी उनके इष्टदेव की भूमि त्र्यम्बकेश्वर गया। नीलगिरि पर्वत की तराई में उनकी वह कुटिया भी खोजी, जहाँ उन्होंने पंचाग्नि की साधना की थी। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर योग की महत्ता को स्थापित करने वाले और बिहार योग विद्यालय के संस्थापक स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के जीवन पर लिखी जा रही मेरी पुस्तक 'परिव्राजक सत्यानन्द' की यह पहली कड़ी है। आपको अच्छी लगे तो इससे मुझे बहुत ऊर्जा मिलेगी और मेरे लेखन में गतिशीलता आयेगी।

क्या आज तुम्हारे पास कोई सवाल नहीं?

तब मैं दसवीं या इंटर का छात्र था। उन दिनों हमलोग मुंगेर में रहते थे। दादाजी जब कभी मुंगेर आते, हमलोगों को कहीं-न-कहीं घुमाने ले जाते, खासकर धार्मिक-आध्यात्मिक सत्संगों में। एक बार वे हमें ऐसी जगह ले गये, जहाँ ऊँची-नीची पहाड़ियाँ थीं। बीच में एक बहुत पुरानी इमारत थी। चारों ओर

कुछ पुराने बेल-खजूर के पेड़ थे। मिट्टी पूरी तरह लाल, पथरीली और पगडंडियाँ बनायी जा रही थीं, नारियल और अन्य पौधे भी लगाये जा रहे थे। पीले-गैरिक वस्त्र पहने लोग अपने-अपने कामों में जुटे रहते। जिधर चाहो घूमो, कोई रोकने-टोकने वाला नहीं था। इधर हमलोग घुमक्कड़ी किया करते और उधर दादाजी एक कमरे में कुछ लोगों के साथ भजन-कीर्तन या व्यायाम करते। अंधेरा घिरने से पहले हम सबको लेकर चल देते। बाद में पता चला कि यहाँ एक विद्यालय बन रहा है, जहाँ सारी दुनिया से लोग योग सीखने आयेंगे।

कमरे में थोड़े-से लोगों के साथ चौकी पर गेरुआ संन्यासी-सा वस्त्र पहने जो लोगों को कुछ बताते-समझाते रहते हैं, वे स्वामी सत्यानन्द सरस्वती हैं। बाद में हमलोग भी उनके भजन-कीर्तन में शामिल होने लगे। पहाड़ी के ऊपर एक इमारत भी थी, जो बंद रहा करती थी। हमलोग उसे कौतूहल से देखा करते। थोड़ी डरावनी भी लगती थी। अंग्रेजों के जमाने में वह वायसराय की कोठी हुआ करती थी। उसी जगह पर बाद में 'गंगादर्शन' की इमारत बनायी गयी और वह उपेक्षित, उबड़-खाबड़ पहाड़ी एक रमणीक आश्रम में तबदील होती गयी। जनश्रुतियों के अनुसार कभी यह पहाड़ी दानवीर कर्ण की दान-भूमि हुआ करती थी। इसलिये इसे कर्णचौरा के नाम से पुकारा जाता रहा।

अक्सर स्वामी सत्यानन्द जी अपने शिष्यों के साथ दूर कहीं काम में लगे दिखायी देते और निर्धारित समय पर हमारे बीच उपस्थित भी हो जाते। उनकी कर्मठता, समयानुशासन और विचारों का मैं कायल होता गया। फिर तो कभी अकेले और कभी दोस्तों के साथ अक्सर वहाँ जाने लगा, लेकिन स्वामी सत्यानन्द जी सिर्फ मुंगेर के लिये ही नहीं बने थे, उनकी तो सारी दुनिया को जरूरत थी, यह बहुत बाद में जाना। आश्रम की पत्रिका 'योगविद्या' हमारे घर आने लगी। स्वामीजी ज्यादातर प्रवास पर रहने लगे। दिल्ली-बम्बई, कभी जर्मनी-फ्रांस तो कभी अमेरिका। हमलोग उनके आगमन की प्रतीक्षा करते। आते तो देश-विदेश के अनुभव सुनाते। 'गंगादर्शन' तेजी से बन रहा था। मुंगेर शहर और आसपास के गाँवों में आश्रम के संन्यासी घूमते दिख जाते। कोई साईकिल पर किताबों का बंडल लिये पोस्ट-ऑफिस की ओर जाता दिखायी देता तो कोई बोरी में सब्जियाँ भरे आश्रम की ओर जाता दिख जाता। किसी से कोई लेना-देना नहीं, बस अपने काम से काम। लोग इन्हें बड़ी इज्जत से देखते। आश्रम में कुछ विदेशी भी आने लगे। वे यहाँ महीनों रहकर आसन-प्राणायाम का अभ्यास करते और चले जाते। आश्रम में विदेशी

लोगों को निकट से देखना बहुत अच्छा लगता था। यहाँ के खान-पान और आश्रम की दिनचर्या में उन्हें आनंदित देखकर अपनी इस योग-संस्कृति पर बहुत गर्व भी होता था।

'गंगादर्शन' इमारत बन जाने के बाद दूसरे तल पर सत्संग होने लगा। स्वामी सत्यानन्द जी सबसे व्यक्तिगत तौर पर मिलते। उन दिनों मैं ओशो साहित्य के प्रभाव में था। हिंदी के उद्भट विद्वान प्रोफेसर राम रघुवीर से ले-लेकर ओशो की पुस्तकें खूब पढ़ रहा था और सच कहा जाए तो ओशो के नूतन विचारों से बहुत प्रभावित भी था। धर्म-अध्यात्म को लेकर तरह-तरह के प्रश्न-शंकाओं में घिरा रहता। स्वामी सत्यानन्द जी से हर मुलाकात में मेरे प्रश्न होते और उनके पास उन प्रश्नों के संतोषजनक उत्तर। उनके ज्यादातर उत्तर ज्ञान या विद्वत्ता पर आधारित होने के बजाय बहुत व्यावहारिक हुआ करते थे। मैंने इक्कीसवीं सदी के भारत की परिकल्पना पर उनसे साक्षात्कार भी लिया, जो लखनऊ की एक पत्रिका में प्रकाशित भी हुआ था।

जिंदगी आगे बढ़ती रही और मेरी उद्विग्नता भी कम होती गयी। एक दिन जब मैंने उनसे कोई प्रश्न नहीं किया, तो सभा के अंत में मुस्कुराते हुये मुझसे पूछ बैठे, 'क्या आज तुम्हारे पास कोई सवाल नहीं?'

साधना और कर्म

साधना के मार्ग में निष्कर्मण्यता अर्थात् कुछ नहीं करना
बहुत बड़ी बाधा है।
निरन्तर बाह्य रूप से भी कर्म करते रहना चाहिये
अन्यथा चेतना अंधेरे लोकों में लौटने लगती है।
मन विषयों में रमने लगता है,
कार्य नहीं करने से अचेतन अवस्था सी आने लगती है।

इसलिए प्राचीन कालों में आश्रमों की व्यवस्था हुई थी,
इसलिए चेला लोगों को रगड़ा और तपाया जाता है,
ध्यान की सफलता और जीवन की पूर्णता
के लिए कर्म जरूरी है।
बाह्य कर्म यदि रोक भी दिये जायें तो भी
मन के सूक्ष्म कर्म होते ही रहते हैं।

अतएव साधना के मार्ग में
बाह्य और आन्तरिक कर्मों में संतुलन आवश्यक है।
चाहे तुम धनोपार्जन के लिए निष्काम कर्म करो
अथवा नाम, यश के लिए कुछ भी किया जाये,
वह तो कर्म का आधार है, प्रयोजन नहीं,
इसे समझो और कर्म में जुट जाओ।

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

सत्यम् आराधना

पृष्ठ 160, ISBN: 978-93-81620-39-7

सत्यम् आराधना पूज्य गुरुदेव, श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती को समर्पित स्तुतिसंग्रह है, जिसमें स्तोत्रों के अतिरिक्त गायत्री, चालीसा, अष्टोत्तरशतनामावलि, सहस्रनामावलि तथा सुमधुर चरितावलि का समावेश किया गया है। श्री स्वामी शिवानन्द जी के आदेश की पूर्ति हेतु श्री स्वामीजी ने जिस योग-क्रांति का शंखनाद किया, उसकी स्वर्ण जयन्ती के शुभ अवसर पर प्रकाशित यह ग्रंथ, श्री स्वामीजी की कृपा, स्नेह और आशीष प्राप्त करने की स्वर्णिम कुंजी है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें –

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गरुड विष्णु, पी.ओ. गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201
दूरभाष : 91–6344–222430, 9162783904

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा

वेबसाइट और एप्प

www.biharyoga.net

बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट पर बिहार योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान संबंधी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

सत्यम् योग प्रसाद

बिहार योग परम्परा की समस्त प्रकाशित कृतियाँ *satyamyogaprasad.net* वेबसाइट पर तथा *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में प्रस्तुत हैं।

यौगिक जीवनशैली साधना

biharyoga.net तथा *satyamyogaprasad.net* पर स्वस्थ जीवन हेतु यौगिक जीवनशैली साधना उपलब्ध है।

योगा एवं योगविद्या ऑनलाइन

www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yoga-magazines/
www.biharyoga.net/bihar-school-of-yoga/yogavidya/

योगा एवं योगविद्या पत्रिकाएँ *Android* एवं *iOS* उपकरणों पर एप्प के रूप में भी उपलब्ध हैं।

अन्य एप्प (Android एवं iOS उपकरणों के लिए)

- योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट की लोकप्रिय पुस्तक, ए.पी.एम.बी. अब सुविधाजनक एप्प के रूप में उपलब्ध है
- *Bihar Yoga* एप्प साधकों के लिए प्राचीन और नवीन यौगिक ज्ञान आधुनिक ढंग से पहुँचाता है
- *For Frontline Heroes* एप्प कोरोनावायरस के विरुद्ध अभियान में संघर्षरत कार्यकर्ताओं के लिए सरल योग अभ्यास प्रस्तुत करता है जो महामारी से उत्पन्न तनाव को सम्हालने में सहायक हैं

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. MGR-01/2020-23
  Office of posting: Ganga Darshan TSO
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

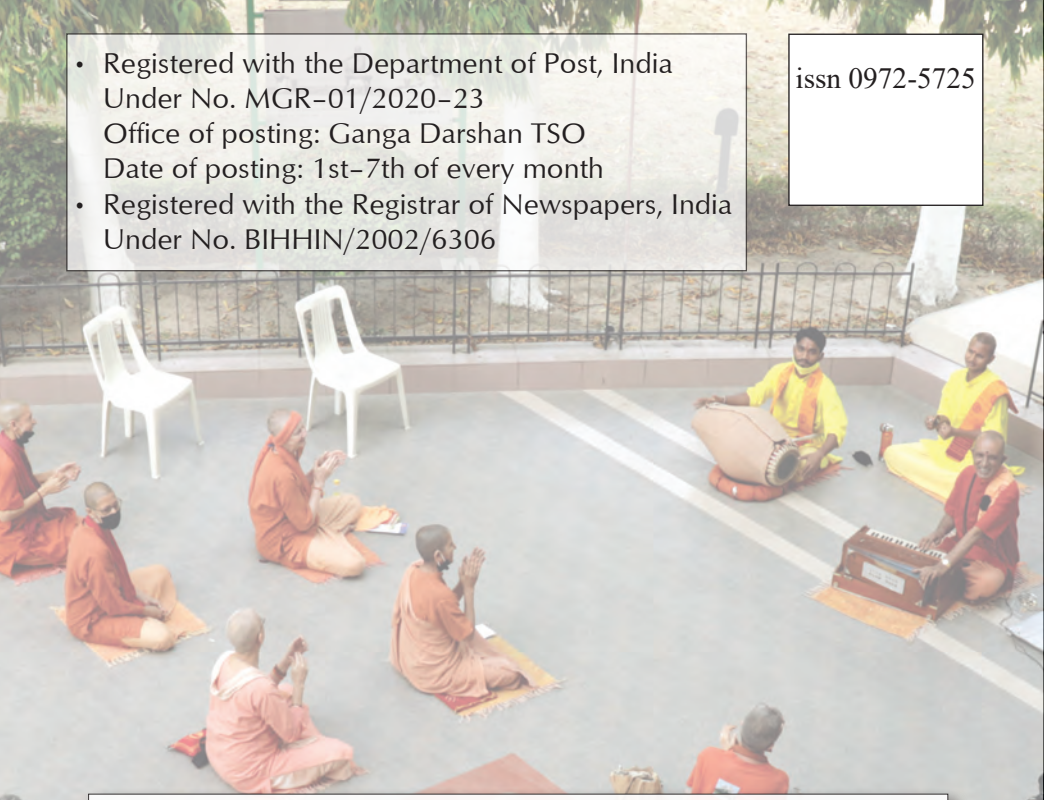

आत्मस्वरूप

हरि: ॐ

हमें यह सूचित करते हुए हर्ष है कि जनवरी 2023 से मासिक योगा (अंग्रेज़ी) तथा योगविद्या (हिन्दी) पत्रिकाएँ सभी योगप्रेमियों, भक्तों, सहयोगियों तथा आध्यात्मिक साधकों के लिए निम्नांकित वेबसाइटों पर नि:शुल्क उपलब्ध हैं –

www.satyamyogaprasad.net

www.biharyoga.net

इन पत्रिकाओं के माध्यम से श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती और श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती की शिक्षाओं को ग्रहण कर उन्हें अपनी दिनचर्या में आत्मसात् करते रहिये ताकि आपका जीवन उदात्त और उन्नत बन सके।

आपके स्वास्थ्य, कल्याण और शांति के लिए श्री स्वामी सत्यानन्द जी के आशीर्वाद सहित,

ॐ तत्सत्

सम्पादक